प्रथम अध्याय :

छायावाद पूर्व आधुनिक काव्य-दृष्टि

१ - छायावाद पूर्व आधुनिक काव्य दृष्टि

क - भारतेन्दु युग

पृष्ठभूमि

चूंकि प्रत्येक युग का साहित्य और उसकी दृष्टियां युग-सापेक्ष्य होती है, अतः सर्वप्रथम हम भारतेन्दु-युगीन साहित्य को प्रेरित व प्रमाणित करने वाली परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे ।

राजनीतिक परिस्थितियां :

१७५७ ई० के प्लासी के यद्धोपरान्त विजयी अंग्रेजों की शक्ति बढ़ चुकी थी । १७६१ में फ्रांस के पांव भारत से उखड़ चले थे । १७६३ की पेरिस की शान्ति संधि के अनुसार पांडेचरी को छोड़कर समस्त भारत से फ्रांस का प्रभाव समाप्त हो गया । प्लासी-युद्ध के पश्चात् अंग्रेज बंगाल के स्वामी बने तथा सिराजुद्दौला के उत्तराधिकारियों को चूसकर ईस्ट इंण्डिया कम्पनी ने अपना कोष भरना प्रारम्भ कर दिया । आगे चलकर कम्पनी को अनेक सुविधाएं मिलीं और उसकी शक्ति बढ़ी । देश पर अंग्रेजी सत्ता के छा जाने की पृष्ठभूमि तैयार हो गयी । " १७५७ से १८५७ तक का शतवर्षीय काल आंग्ल सत्ता के भारत पर छाने का है ।" [१] सन् १८३३ ई० से १८५६ ई० तक की राजनीतिक परिस्थिति ने देश में क्रान्ति के बीज का चयन किया किया । अंग्रेजों ने सिन्ध, पंजाब, अवध आदि की स्वाधीनता का अपहरण किया । इधर नाना साहब की पेंशन - समाप्ति, झांसी की रानी को गोद न लेने की आज्ञा, सिविल सर्विस में भारतीयों के साथ पक्षपात आदि ने देश में असन्तोष की भावना को जन्म दिया जिसका उद्गार १८५७ ई० के विद्रोह के रूप में हुआ । यह उस समय एक महत्वपूर्ण घटना थी ।

---

१ - भारतेन्दु युगीन नाट्य साहित्य : डा० मानदेव शुक्ल, पृष्ठ - २७

१८५७ ई० का विद्रोह शान्त हुआ । इसमें राष्ट्रीय पक्ष को तो पराजित होना ही पड़ा किन्तु शासक वर्ग को भी अपना चोला बदलना पड़ा । कंपनी का शासन समाप्त हुआ और शासन-व्यवस्था ताज के हाथों में पहुंच गयी । १ नवम्बर १८५८ ई० को नई-व्यवस्था की उद्घोषणा हुई । महारानी विक्टोरिया ने अपना घोषणा पत्र भेजा जिसमें सहृदयता, उदारता और धार्मिक सहिष्णुता थी । महारानी के इस घोषणा पत्र से जनता आश्वस्त हो गयी ।[१] जनता का भय और असन्तोष दूर हुआ ।[२] कवियों ने गदगद कंठ से अंग्रेजी राज्य का गुणगान किया -

परम मोदफल राजपद परसन जीवन माहि । बृटन देवता राजस्युत पर परसहु चित मांहि ।[३] जयति धर्म सब देश जय भारत भूमि नरेश । जयति राज राजेश्वरी जय जय वरमेश ।[४]

हाईकोर्टों व अदालतों की स्थापना, इंण्डिया कौंसिल एक्ट का निर्माण और अनेक रियासतों के करों की माफी ने जनता को प्रसन्न कर दिया । सन् १८७७ में देशी राजा-महाराजाओं ने अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन किया । स्वायत्त शासन की स्थापना, जिलों में जिला बोर्डों व तहसीलों के निर्माण ने भारतेन्दु, प्रेमघन, अंम्बिकादत्त व्यास, श्रीधर पाठक, बाल मुकुन्द गुप्त जैसे कवियों को अंग्रेजी शासन के प्रशस्तिगीत गाने को बाध्य किया ।

शासन की इस उदारतावादी नीति के बावजूद भी शोषण-नीति अपरिवर्तित रूप में चलती रही । यद्यपि भारतीय जनता को मुसलमानी अत्याचारों, ठगों, अनेक राजाओं के पारस्परिक युद्धों, एक देश में दर्जनों विभिन्न मुद्राओं आदि शताब्दियों

---

१ - भारतेन्दु युग : डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ- २
२ - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : डा० उदयभानु सिंह, पृष्ठ - १
३ - भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ - ७०२
४ - अंबिकादत्त व्यास : मन की उमंग

की अव्यवस्थित दशा से मुक्ति मिली, तो भी शोषण के द्वारा उद्योग धन्धों का ह्रास हुआ और बेकारी बढ़ी। इधर अकाल भी पड़ने लगे। " जनता ने नम्र निवेदन किए, शासन की न्याय भावना के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए अपनी मांगें प्रस्तुत की। अंत में महारानी के शासन के प्रति मंगल कामना करने वाला कृतज्ञ भारतीय निराश होकर उग्र राष्ट्रीयता की ओर झुकने को बाध्य हुआ।" [१] फलस्वरूप दूरदर्शी ह्यूम ने दादा भाई आदि के सहयोग से १८८५ ई० में इंण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की। भारतेन्दु युग की यह दूसरी महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना थी।

कांग्रेस को ज्यों-ज्यों देशवासियों का सहयोग मिलता गया त्यों-त्यों वह आत्मतेज और आत्मावलम्बन की नीति ग्रहण करती गयी। इस संस्था ने अमीरी-गरीबी, धर्म, जाति, वर्ण, लिंगादि जैसा कोई विभेद नहीं रखा। " विकास की प्रारम्भिक भूमिका में मधुरवाणी से काम लिया; अंग्रेजों की प्रशंसा और अपनी राजभक्ति की अभिव्यक्ति तक थी। लोकमान्य तिलक ने विदेशी शासकों के प्रति घृणा के विचारों का प्रचार किया। कांग्रेस की राष्ट्रीयता उग्र रूप धारण करती गयी। उसकी वृद्धि के साथ सरकार भी उसपर संदेह करने लगा। सितम्बर सन् १८९७ में तिलक को १८ मासकी कड़ी सजा दी गयी, मैक्समूलर, हंटर आदि के कठिन आवेदन पर एक वर्ष बाद वे छूटे।" [२] इस प्रकार १९०० ई० के लगभग तक का काल नवचेतना का काल है।

इस राजनीतिक परिस्थिति का प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ा। रचनाकारों ने तत्कालीन राष्ट्रीय नवोन्मेष के चित्र खींचे हैं।

<u>आर्थिक दशा</u> :

भारत में अंग्रेजों के आगमन का मुख्य लक्ष्य था - व्यापार। अर्थ प्राप्ति उनका उद्देश्य था और उनके समस्त क्रियाकलाप इस साध्य तक पहुंचने के साधन थे। यों ब्रिटेन

---

१ - भारतेन्दु युगीन नाट्य साहित्य : डा० भानुदेव शुक्ल, पृष्ठ - २८
२ - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : डा० उदयभान सिंह, पृष्ठ - ३

पर प्रकृति की कृपा न होने से वहां कोई भी वस्तु आवश्यक्ता से अधिक न ही पैदा होती । अतः अंग्रेजों ने अपना औद्योगिक उत्पादन बढ़ाया और उत्पादित वस्तुओं को विश्व-बाजार में विक्रय करके प्राहा द्रव्य से अपनी आवश्यक्ता की चीजों को क्रय किया । उन्होंने अपना व्यापार भी बढ़ाना शुरु किया । भारत एक उचित बाजार भी मिल गया, जहां उनके उद्योगों के लिए सस्ते कच्चे माल भी उपलब्ध हो जाते थे और उत्पाद वस्तु के विक्रयार्थ बाजार भी । ईस्ट इंण्डिया कंपनी ने भारत को सैन्य बल से परास्त कर परिस्थिति का खूब लाभ उठाया और इस देश का आर्थिक शोषण प्रारम्भ किया ।

" अपने आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए कंपनी तथा उसके 'ताज' के शासन ने भारत को औद्योगिक-दृष्टि से न पनपने देने के नीति का पालन किया । "[१] अंग्रेजों की नियत का स्पष्ट चित्र लार्ड डलहौजी के निम्न शब्दों में अंकित है -

" नागपुर राज्य का शासन ठीक-ठीकाने के साथ हो तो, इंग्लैंड का एक बड़ा भारी अभाव दूर हो सकता है । यहां रूई बहुत पैदा होती है । यदि यहां से खूब काफी तादाद में रूई विलायत भेजी जाया करे, तो इंग्लैण्ड के व्यापार की बड़ी उन्नति हो । जब मैं इंग्लैण्ड से चलने लगा था, तब मैनचेस्टर के व्यापारियों ने मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित किया था । इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री ने भी कई बार इस ओर मेरा ध्यान खींचा है । मैं स्वंय भी इस ओर से उदासीन नहीं हूं । यहां से रूई चलान होने लगे तो इंग्लैण्ड को फिर किसी देश का मुंह न ताकना पड़े । "[२]

एक अंग्रेज लेखक ने तो यहां तक लिखा है कि - " रूई ने अंग्रेजों की न्याय-प्रियता को कान मूंदकर आंखे फोड़ दी, जिससे वह अंधी और बहरी हो गयी । "[३]

भारत ने अंग्रेजों को प्रोत्साहन स्वरूप अतिरिक्त कृषि सामग्री को उत्पादन किया और

---

१ - भारतेन्दु युगीन नाट्य साहित्य : डा० भानुदेव शुक्ल, पृष्ठ - २६

२ - India under Dalhousie & Canning: by Duke of Arquith, pg. 38.

३ - The Rebellion in India: H.J.P. Forton.

उत्पादित वस्तुओं को बन्दरगाह तक ले जाने के लिए रेलों व सड़कों का निर्माण हुआ। आवागमन की सुविधा के कारण भारतीय कृषि में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत हुआ। योरोपीय तथा विदेशी वस्तुओं ने भारतीय बाजार पर अधिकार कर लिया, यन्त्रों से स्पर्धा न कर सकने के कारण देशी कारीगर कृषि की ओर झुके। खेती की दशा भी शोचनीय थी। जनसंख्या में वृद्धि, उर्वराशक्ति के क्रमशः ह्रास, रीतियों और नीतियों के कारण उनकी आर्थिक दशा बिगड़ती जा रही थी।[१]

इस बिगड़ती हुई अर्थदशा को और बिगाड़ने में सहयोग प्राप्त किया अंग्रेजों की आर्थिक-नीतियों ने। अंग्रेजों ने सिर्फ रुपयों में ही लगान वसूली आरम्भ की जबकि मुगलकाल में लगान अनाज अथवा रुपये में लिया जाता था। यह लगान भी प्रतिवर्ष बढ़ता ही गया। निम्नांकित आकड़े को अवलोकन करें:-

१७६४ ई० नवाब के समय बंगाल का लगान - ८१ लाख ७५ हजार रुपये
१७८४ ई० कंपनी के समय बंगाल का लगान - १ करोड़ ४७ लाख ५ हजार रुपये
१७९४ ई० कंपनी के समय बंगाल का लगान - २ करोड़ ६८ लाख रुपये

नबाब के समय अवध का लगान - १ करोड़ ३५ लाख रुपये
कंपनी शासन के प्रथम वर्ष अवध का लगान - १ करोड़ ५६ लाख रुपये
कंपनी शासन के द्वितीय वर्ष अवध का लगान - १ करोड़ ६१ लाख ७५ हजार रुपये[२]

इधर १८१३ ई० के चार्टर ने कंपनी का एकाधिकार समाप्त कर यह घोषित किया कि भारत में उत्पादित कच्चा माल विलायत भेजा जाय और विलायत में निर्मित सामान भारत में आयात हो। इससे आर्थिक शोषण की दोहरी नीति चली।

---

१ - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : डा० उदय भानु सिंह, पृष्ठ - ४
२ - डा० भानुदेव शुक्ल : भारतेन्दु नाट्य साहित्य, पृष्ठ - ३१

भारत का हस्त उद्योग भी मिट चला और लोग कृषि की ओर झुके। भारतीय वस्त्र इंग्लैण्ड में बने वस्त्र से श्रेष्ठ होता था। अंग्रेज इसे सस्ते दरों पर क्रय करके इंग्लैण्ड में बेचते थे। कारीगरों की आर्थिक दशा इससे भी बिगड़ी।

नेहरू जी ने लिखा है कि, " कारीगर पेशा के खत्म हो जाने की वजह से बहुत बड़े पैमाने पर बेकारी फैली। ये करोड़ो आदमी, जो अब तक तरह-तरह के सामान तैयार करने के काम में व अलग-अलग धन्धों में लगे हुए थे, अब क्या करते ? वे कहां जाते ? अब उनका पुराना पेशा खुला हुआ नहीं था। हां, वे मर सकते थे, असहाय हालत से बचने का यह रास्ता तो हमेशा खुला हुआ होता है। और वे करोड़ों की तादाद में मरे भी। हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल बेंटिंग ने १८३४ ई० में कहा - " व्यापार के इतिहास में तकलीफ की ऐसी कोई मिसाल पाना मुश्किल है। जुलाहों की हड्डियां हिन्दुस्तान के मैदानों को सफेद किए हुए हैं।[१]

इस प्रकार जहां एक ओर भारतीयों का आर्थिक शोषण हो रहा था, वहीं दूसरी ओर अपनी " राज्य हड़प " नीति के लिए कुख्यात लार्ड डलहौजी ने अनेक सुधार और उन्नति के भी कार्य किये जिसके लिए भारत उसके प्रति सदैव ऋणी रहेगा। भारत में प्रथम रेलवे लाइन का निर्माण, अधन्ना पोस्टकार्ड की शुरुवात, महागंगा नहर की योजना का क्रियान्वयन, ग्रांड-ट्रंक रोड को आधुनिक रूप देना, रुड़की इंजिनियरिंग कालेज की स्थापनादि कार्य उसे चिरस्मरणीय रखेंगे। १८५२ में कलकत्ता के पास प्रथम तार घर की स्थापना, १८५३ में देशभर में ७५० डाकघरों की व्यवस्था, सूती मिलों की स्थापना, २० जूट मिलों का निर्माण प्रभृति कार्यों के कारण लार्ड डलहौजी का नाम भारतीय इतिहास में अमर हो गया।

१-नेहरू : हिन्दुस्तान की कहानी, पृष्ठ ३६७, अनु० रामचन्द्र वर्मा।

तात्पर्य यह कि १९वीं शताब्दी का भारत एक ओर आर्थिक शोषण और बेकारी से त्रस्त था तो दूसरी ओर उसके समक्ष वैज्ञानिक उपकरणजन्य बढ़ती हुई सुख-सुविधाएं भी थी। इसके अतिरिक्त १८०३-०४ में बम्बई का, १८०७, १८२३ एवं १८३३ में मद्रास का, १८१३ में बम्बई का, १८३७ में उत्तर भारत का, तथा १८६०, ६६, ६९, ७४, ९६, ९८ एवं १९०० ई० के अकालों ने हमारी रही-सही अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया। इस युग के साहित्यकारों ने इस पर प्रकाश भी डाला है:

" आयो विकराल काल मारी है अकाल परयो
पूरे नाहि अर्ध घर भर की कमाई में ।
कौन भांति देवें टैक्स, इनकम, लैसन और,
पानी की पियाई, लैटरन की सफाई में ।
कैसे हेल्थ साहब की बात कछू कान करे ·
पड़ने सुसीत भूमि पौदे चारपदि में ।
किमि के बचावे स्वांस और कौन ओर घुसे,
सावें साथ चार चार एक ही रजाई में । "

(बाबू पुत्तन लाल " रामस्यापूर्ति, मा० २०६, सम्पादक : रामकृष्ण वर्मा १८९६)

कुल मिलाकर " एक ओर तो दुर्भिक्ष पड़ रहे थे, भारत का धन विदेशों में खिंचा जा रहा था, पुराने उन्नत उद्योग नष्ट हो रहे थे अथवा हो चुके थे, लगान बढ़ता जाता था तथा दूसरी ओर नवीन उद्योग खुल रहे थे, धार्मिक स्वतंत्रता थी, सारे देश में शान्ति थी, सारे देश में समान मुद्रा प्रणाली थी, शिक्षा का प्रसार हो रहा था तथा भविष्य आशामय दिखलाई पड़ता था। भारतीय जनता - विशेषकर - हिन्दू के सम्मुख चित्र के दो स्वरूप थे। भारतीय नये शासन के प्रति कृतज्ञ भी थे तथा इसकी शोषण नीति का विरोध भी कर रहे थे।" [१]

---

१ - डा० भानुदेव शुक्ल : भारतेन्दुयुगीन नाट्य साहित्य : पृष्ठ ३५ ।

सामाजिक एवम् सांस्कृतिक परिस्थितियां :

ऊपर हमने भारतीयों के प्रति राजनीतिक अन्याय और आर्थिक शोषण का वर्णन किया है। इनके कारण भारतीयों ने अंग्रेजों का विरोध किया। फलस्वरूप राजनीतिक जागृति की एक लहर सी दौड़ गयी। इसने अपना प्रभाव जीवन के समस्त क्षेत्रों में डाला। हमारा सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन भी अप्रभावित नहीं रह सका। भारतीयों ने समाज में अनेक बुराइयों को देखा और राजनीतिक सुधार के साथ-साथ वे सामाजिक सुधार की ओर भी आकृष्ट हुए।

इस सुधार के दो पक्ष थे - एक तो नवीन व्यवस्था को अंगीकृत कर प्राचीन विकृत, सड़ी-गली व्यवस्था को तिलांजलि दे देना, दूसरे भारतीय संस्कृति का त्याग। उल्लेखनीय है कि सुधारों का विरोध कहीं नहीं हुआ। सभी ने इसका स्वागत ही किया। बंग प्रदेश में पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होकर राजाराम मोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। महर्षि दयानन्द ने वैदिक-संस्कृति का आधार लेकर सामाजिक सुधार के लिए 'आर्य समाज' आन्दोलन प्रारम्भ किया।

दोनों ही आन्दोलनों का एक लक्ष्य था - धार्मिक और सामाजिक रूढ़ि विरोध के साथ पाश्चात्य सभ्यता के समक्ष न झिगने वाले प्रगतिशील समाज का निर्माण। परन्तु इन दोनों आन्दोलनों की लक्ष्य प्राप्ति के साधन अलग-अलग थे।

इस सामाजिक और सांस्कृतिक परिष्कार की लहर सर्वप्रथम बंगाल में उठी, कारण कि भारत में सबसे पहले वहीं अंग्रेजी शासन की स्थापना हुई थी। राजाराम मोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना वैज्ञानिक आधार पर की। इसी 'ब्रह्म समाज' के प्रभाव से महाराष्ट्र में 'प्रार्थना समाज' की स्थापना हुई। 'प्रार्थना समाज' ने उद्घोषणा की कि वह वेद को ईश्वर प्रणीत नहीं मानता है।

राजाराम मोहन राय एक गुण ग्राही, स्वाधीन-चेता, निष्पक्ष-चिंतक थे। उन्होंने अपने 'ब्रह्म समाज' में विविध धर्मों के उत्कृष्ट सिद्धान्तों को स्वीकार किया। मुस्लिम-धर्म के एकेश्वरवाद, हिन्दूधर्म के आत्मपरक -चिंतन, मन की पवित्रता और ईसाई-धर्म के प्रवर्तक ईसा के अद्वितीय नैतिक व्यक्तित्व ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। यही नहीं बेकन के 'अनुभवगम्यज्ञान तथा प्रयोग' ने भी उन्हें बहुत कुछ दिया। फ्रांस की क्रान्ति के सिद्धान्त 'स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व' में उन्होंने नवयुग का संदेश सुना। 'ब्रह्म समाज' के प्रगतिशील विचारों के मूल में यही सब है।

'राजाराम मोहन राय की विशेषता यह थी कि एक ओर तो वे वेदान्त के स्थान से हिलने को तैयार नहीं थे, दूसरी ओर वे अपने देशवासियों को अंग्रेजी के द्वारा पाश्चात्य विद्याओं में निष्णात बनाना चाहते थे। भारतवासी संस्कृत, अरबी और फारसी पढ़कर बस मान लें अथवा अंगरेजी पढ़कर क्रिस्तान हो जांय, इन दोनों खतरों से वे भारतीयों को बचाना चाहते थे। किन्तु उनका यह भी मत था कि हिन्दुत्व का कोई भी ऐसा रूप नहीं रहना चाहिए, जो विज्ञान और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरा-नहीं उतरता हो।' [१]

आगे चलकर केशवचन्द्रसेन के नेतृत्व में ब्रह्म समाज और अधिक पाश्चात्योन्मुखी हो उठा जो महर्षि दयानन्द सरस्वती को उचित न लगा। फलस्वरूप उन्होंने पंजाब और हिन्दी प्रदेशों में एक नया सुधारवादी आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। १८७५ ई० में इस आन्दोलन को एक व्यवस्थित रूप देने के लिए बम्बई में 'आर्य समाज' की स्थापना हुई। उन्होंने जन-सम्पर्क की भावना से संस्कृत को न अपना कर खड़ी बोली हिन्दी को चुना और अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

---

१ - दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय : पृष्ठ ५४५।

" आर्य समाज का उद्देश्य वैदिक संस्कृति एवं वेदों के प्रचार के द्वारा एक ईश्वर, एक संस्कृति, तथा एक धर्मग्रन्थ के सूत्र में हिन्दू मात्र को बांध कर जातीय चेतना एवं एकता जगाने तथा धार्मिक स्वाधीन राष्ट्र का निर्माण था। ---एक ओर इसने हिन्दू धर्म में घुसी जर्जर-रूढ़ियों एवं विचारों पर आघात किए तो दूसरी ओर इसने आर्य धर्म के विरोध में खड़े अन्य धर्मों से भी टक्कर ली" [१]

इस प्रकार "ब्रह्म समाज" और "आर्य समाज" के प्रचार का प्रभाव भी तीव्र रूप से पड़ा। सम्भवत: इसी के फलस्वरूप राजनैतिक मनोदृष्टि में भी परिवर्तन हुआ। सुधार, जागर्ति, स्वतंत्रता और क्रान्ति की लहर अपने आप जीवन के सभी पक्षों पर छा गयी। हिन्दी साहित्य पर इस लहर का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इसी से काव्य में आधुनिकता का प्रादुर्भाव हुआ।" [२]

इन धार्मिक संगठनों के अतिरिक्त हिन्दी प्रदेश को प्रभावित करने वाले अन्य धार्मिक संगठन थे - रामकृष्ण परमहंस मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी एवं सनातन धर्म मंडल। तत्कालीन हिन्दी काव्य पर इनका भी प्रभाव स्पष्ट है।

साहित्यिक परिस्थिति :

जिस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अवतार धारण किया, वह हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए अत्यन्त प्रतिकूल था। इसका आभास निम्न पंक्तियों से हो जाता है-

" भोज मरे अरु विक्रमहू किनको अवरोइ के काव्य सुनाइऐ।
भाषा भई उरदू जगकी अबतोइन नैननि नीर दुबाइये।
राजा भये सब स्वारथ-पीन अमीरहु हीन किन्हें दरसाइये
नाहक देनी समस्या अबै यह "ग्रीषम प्यारे हिमन्त" बनाइये। "

१ - डा० भानुदेव शुक्ल : भारतेन्दु युगीन नाट्य साहित्य : पृष्ठ ३७।
२ - डा० हरदेव बाहरी : हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास : पृष्ठ -१६२ और १६३।

स्पष्ट है कि कविता का राज्याश्रय समाप्त हो चुका था क्योंकि सामन्ती प्रथा का अंत हो रहा था। ऐसी दशा में हिन्दी कविता राजदरबारों के चाकचिक्य से उठकर जनसंकुल प्रकृत वातावरण में आने को बाध्य थी। रीतिकालीन श्रृंगार की उन्मद प्रमत्तता, वासना-पंकिलता एवं कृत्रिमता से काव्य अपने को मुक्त कर रहा था। कविगण कल्पना लोक से उतरकर वास्तविक लोक में विचरने लगे। पहले के कवि देव-गन्धर्व-किन्नर-यक्ष इत्यादि को अधिक महत्व देते थे, अब के कवि मनुष्यों को ही श्रेष्ठ समझने लगे। ये लोग रंग-महलों और राजदरबारों को छोड़, झोपड़ियों और गलियों में आये। जीवन से इनका साक्षात्कार हुआ। कृत्रिमता के स्थान पर स्वाभाविकता, बंधन के स्थान पर स्वच्छन्दता, श्रृंगार के साथ-साथ वीर रस और नायिका प्रेम के साथ-साथ देश प्रेम भी हिन्दी कविता में लक्षित होने लगा।[१]

भारतेन्दु युग से पूर्व रीति-काल में हिन्दी कविता पर अनेकानेक बंधन थे। विषयवस्तु, भाषा, छन्द-यहां तक कि पाठक और कवि की रुचि भी सीमित थी। उस समय कविता सर्वसाधारण की वस्तु नहीं थी। काव्य की भाषा ब्रजभाषा थी जो एक सीमित वर्ग में बोली जाती थी। नायिका-भेद, नखशिख वर्णन और रीति ग्रन्थों का अनुकरण मात्र ही तत्कालीन कविता के विषय वस्तु थे। श्रृंगार रस को छोड़ और किसी रस या भाव की स्मृति इस युग में शेष नहीं थी। श्रृंगार के संयोग-वियोग दोनो पक्षों का सांगोपांग वर्णन इन कवियों ने किया। श्रृंगार के अन्तर्गत इन्होंने संयोग पक्ष का एवं नायिका के सौन्दर्य का निरूपण किया। आलंम्बन की मधुर छवि एवं उसकी चेष्टाओं के अंकन के लिए उन्होंने नख-शिख-वर्णन की परम्परागत शैली में थोड़ा संशोधन करके नई पद्धति का विकास किया। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन

---

१ - भारतेन्दु ग्रन्थावली : इ० सं० : पृष्ठ - ८६६।

कवियों के सौन्दर्य चित्रण की एक भारी विशेषता नायिका के हावों व अनुभावों का अत्यन्त स्वाभाविक रूप में चित्रण करना है। नायिकाओं की हृदयस्थ भावनाओं एवं प्रिया के सान्निध्य से प्राप्त होने वाली अनुभूतियों की व्यंजना भी इन्होंने अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक की है। इन कवियों के विरह वर्णन ऊहात्मकता से भरे पड़े हैं। इस प्रकार इनका विषय-क्षेत्र सीमित हो चला था। एक जैसे भावों की ही आवृत्तियों से काव्य सरोवर पंकिल हो उठा था। इन साहित्य के मालियों में से जिसकी विलास - वाटिका में भी आप प्रवेश करें, सबसे अधिकतर वही कदली के स्तम्भ, कमल-ताल, दाड़िम के बीज, शुक, पिक, खंजन, शंख, पद्म, सर्प, सिंह, मृग, चन्द्र, चार आंखें होना, कटाक्ष करना, आहें छोड़ना, रोमांचित होना, दूत भेजना, कराहना, मूर्छित होना, स्वप्न देखना, अभिसार करना - बस इनके सिवा और कुछ नहीं। सबकी बावड़ियों में कुत्सित प्रेम का फुहारा शत-शत रसधारों में फूट रहा है, सीढ़ियों पर एक अप्सरा जल भरती है या स्नान करती है, कभी एक संग रपट पड़ती, कभी नीर भरी गगरी ढरका देती हैं। वीथियों में परायी पीर न जानने वाली स्वच्छन्द दूती विचर रही हैं, जिसका धूर्तपन वापी नहाने का बहाना करने पर भी स्वेद की अधिकाई, तथा पीक लीक की ललाई के कारण प्रकट हो ही जाता है, कुंजों से उद्दाम यौवन की दुर्गन्ध आ रही है, जिनके सघन पत्रों के झरोखों से " दीरघ दृग " प्रीतमयी बाट में दौड़-लगा रहे हैं। इस प्रकार रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों की दृष्टि कामिनी के कच, कुच, कटाक्ष तक ही सीमित रही।

रीतियुग के कवि अपने पौराणिक आदर्श चरित्रों एवं ऐतिहासिक वीर योद्धाओं को भूल गये थे। राम, कृष्ण और सीता, राधा के साथ महाबीर, बुद्ध और महाराणा प्रताप तथा शिवाजी जैसे उदात्त चरित्र भी विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गये थे। रीतिकालीन कवियों ने यदि कभी पौराणिक चरित्रों का स्मरण भी किया तो एक साधारण नायक और नायिका के रूप में। श्रृंगार पूर्णतः ऐहिकतामूलक हो गया। राधाकृष्ण का नाम उनके लिए सामाजिक कवच का काम कर रहा था। भिखारी दास

की निम्नलिखित पंक्तियां इसी भावना की द्योतक है :-

" आगे के सुकवि रीझि है तो कविताई
न तु राधा कन्हाई सुमिरन को बहानो है । "

द्विजदेव भी यही कहते हैं :-

" रसिक रीझिहैं जानि, तो ह्वै है कविताई सफल
नतरु सदा सुखदानि, श्री राधिका हरि को सुजस है । "

इस प्रकार राधा-कृष्ण की आड़ में अश्लील ऐहिकतामूलक श्रृंगार की धारा प्रवाहित होने लगी । इसी प्रकार रीति काल में विषय ही नहीं कला-क्षेत्र में भी संकोच हो गया । कवित्त, सवैया, और दोहा ये तीन ही छन्द रीतिकाल में प्रयुक्त होते थे तथा यमक, अनुप्रास और तुकबंन्दी के साथ प्रचुर काव्य ही प्रचलित है । महाकाव्य, खंडकाव्य, गीत और गीतकाव्य जैसे काव्य रूपों को वहां स्थान नहीं था । इन सबका कारण था कि कविता सामान्य जनता की आशा-आकांक्षाओं का प्रतिबिम्ब न होकर राजाओं और राजकवियों की आकांक्षाओं की प्रति ध्वनि थी [१]। इन राजाओं की रूचि जितनी संकुचित थी, रीतिकालीन कविता का क्षेत्र भी उतना ही सीमित हो उठा था ।

" इस संकुचित सीमा से हिन्दी कविता को तब मुक्ति मिली जब भारतेन्दु युग का प्रारम्भ हुआ । " [२] शताब्दियों से हिन्दी कविता भक्ति या श्रृंगार के रंग में रंगी चली आ रही थी । केवल चुम्बन और आलिंगन, रति और विलास, रोमांच और स्वेद,

---

१ - भूषन यों कवि के कविराजन, राजन के गुन गाय नसानी । - भूषण

२ - छायावादी काव्य और निराला : डा० कु० शान्ति श्रीवास्तव : पृष्ठ ५३ ।

स्वकीया और परकीया की कड़ियों में जकड़ी हुई हिन्दी कविता को सर्वप्रथम भारतेन्दु ने विलास-भवन और लीला कुंजों से बाहर निकालकर लोक जीवन के राजपथ पर खड़ा किया। हिन्दी कविता में भारतेन्दु ने सर्वप्रथम समाज के वक्षस्थल की धड़कन को सुनाया।[१] अब जीवन का प्रत्येक विषय - राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक लेखक का विषय हो जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो अकस्मात् उसने सभी विषयों में रूचि लेने की असीम योग्यता विकसित कर लेती है। रूप-विधान के विषय में आधुनिक लेखक साहसपूर्ण नये रूपों और आदर्शों के प्रयोग में विश्वास रखता है।[२]

भारतेन्दु युगीन कवियों की प्राचीनता के प्रति जितनी निष्ठा थी, उतनी ही उत्सुकता नवीन के प्रति भी थी। इन्होंने पहली बार साहित्यिक बंधनों से मुक्त होकर नये-नये विषयों की ओर ध्यान दिया। हिन्दी कविता नई दिशा में मुड़ चली। अतीत गौरव, वर्तमान-दरिद्रता, देश दशा, सामाजिक कुरितियां, समाज-सुधार आदि अनेक राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक विषयों पर कविताएं लिखी जाने लगी। कवि कल्पना लोक से उतरकर वास्तविक लोक में विचरण करने लगा।[३] इस प्रकार इस युग ने कविता के क्षेत्र में एक अपूर्व भावाकल्प प्रस्तुत किया।

हिन्दी कविता का भावकल्प ही भारतेन्दु काल की देन है भारतेन्दु और उनके मण्डल ने भाव की क्रान्ति के द्वारा ही युगान्तर किया था। यह भावकल्प पूर्णतया अतीत की परम्परा से विच्छिन्न न हो सका।[४]

विषय परिवर्तन के साथ ही छन्द एवं शैली में भी परिवर्तन आया। इस प्रकार भारतेन्दु युग की काव्यदृष्टि अपने पूर्ववर्ती युगीन काव्य दृष्टि से बिल्कुल भिन्न हो उठी। यहां हम भारतेन्दु युग के कवियों की काव्य विषयकमान्यताओं का पृथक-पृथक और समवेत आकलन करेंगे।

---

१ - हिन्दी कविता का क्रान्ति युग : प्रो० सुधीन्द्र : पृष्ठ - २६।
२ - हिन्दी साहित्य के विकास की रूप रेखा : डा० राम अवध द्विवेदी, पृष्ठ - १३८
३ - हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास : डा० हरदेव बाहरी, पृष्ठ - १६२।
४ - हिन्दी कविता में युगान्तर : प्रो० सुधीन्द्र : पृष्ठ - ५६।

२ - भारतेन्दु युगीन काव्य दृष्टि

सैद्धान्तिक दृष्टि :

इस युग के साहित्य के केन्द्रक (Nucleus) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ही थे। उनके उदय के साथ ही रीतिकालीन वासनोन्मुख श्रृंगार के तिमिराच्छन्न साहित्य का नभोमंडल जगमगा उठा। श्रृंगार की घोर तमिस्रा में मार्ग भूला हुआ साहित्यकार इस 'इन्दु' की शीतल किरणों का संस्पर्श और मार्गदर्शन पा नवनवोद्भूतियों की ओर चल पड़ा। 'भारतेन्दु जी ने स्वयं काव्य, नाटक, निबंधादिकों की रचनाएं की, उनके सिद्धान्तों का निरूपण किया और हिन्दी साहित्य को नवमान्यताओं से आपूरित किया। इस युग के कवियों ने भी काव्य-चिन्तन की परम्परागत रीति (रस, अलंकार, नायिका भेद, काव्य गुण, काव्यदोष आदि का विस्तृत विवेचन) को त्याग कर अपने युग की परिवर्तित सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों के अनुकूल काव्यांगों की नवीन रूप में चर्चा की है। यहां हम 'भारतेन्दु' जी के काव्य विषयक मान्यताओं का अध्ययन करेंगे।

काव्य का वर्ण्य-विषय :

भारतेन्दु युग के पूर्व वीरगाथा, भक्ति और रीतिकाल की एक उर्वर भूमि है। वीरगाथाकालीन काव्य का वर्ण्य मुख्यत: लौकिक ही रहा। वहां शस्त्रों की झन-झन के साथ नूपुरों की खन-खन, कृपाणों के साथ कटाक्षों और वीर के साथ श्रृंगार रस की सृष्टि होती रही। इस लौकिक काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप अलौकिक भक्ति साहित्य का उद्भव हुआ। इसके पश्चात् रीति काल की श्रृंगारमयीधारा का प्रवाह हुआ जिसकी पूर्ण लौकिक लीलामयी धारा में पूर्वयुगीन अलौकिकता तिरोहित हो उठी। परन्तु भारतेन्दु जी ने लौकिक-अलौकिक दोनों के समन्वय पर बल दिया। काव्य के अलौकिक वर्णनों में उन्होंने

साकार को महत्व प्रदान किया है। उनके मतानुसार भक्तिपूर्ण काव्य ही सत्काव्य है -

सन्त मन भाई सुखदाई है सुहाई जा में,
कृष्ण के लिगाई सोई सांची-कविताई है। [१]

वर्ण्य विषय की लौकिक विविधता की ओर उन्होंने स्पष्ट इंगित किया है :-

काव्य सुरस शृंगार के दोउ दल कविता नेम।
जग जन सो, के ईश सो कहियत जेहि पर प्रेम। [२]

यहां वर्ण्य की लौकिकता और अलौकिकता दोनों की ओर व्यंजना है। 'जग जन-प्रेम' से सांसारिक, लौकिक, मानवतावादी, व्यापक के समष्टिपरक रूप से तात्पर्य है। इस प्रकार भारतेन्दु ने काव्य के वर्ण्य को लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों में देखा है।

काव्य की आत्मा :

संस्कृत आचार्यों की भांति काव्य की आत्मा को पहचानने की महती चेष्टा की है। रस को वे काव्य का मुख्य सौन्दर्य विधायक तत्व मानते थे। उनके काव्य में अलंकार, रीति आदि अन्य काव्यांगों का भी यथास्थान समावेश हुआ है तथापि उन्होंने रस - सम्प्रदाय को ही अपनी मान्यता प्रदान की है -

जामें रस कछु होत है, पढ़त ताहि सबकोय
बात अनूठी चाहिए, भाषा कोऊ होय। [३]

ऊपर के उद्धरण में अप्रत्यक्ष रूप से रस को ही गौरव प्रदान किया गया है। अतः भारतेन्दु जी रस को ही काव्य की आत्मा मानते हैं। उनके प्रसिद्ध दोहे- काव्य सुरस आदि में

१ - प्रेम - माधुरी, छन्द ६१।
२ - प्र० मा०, पृष्ठ ४१०।
३ - भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्र० मा०, पृष्ठ ३७२।

रस का सर्वोपरि महात्म्य ही व्यंजित होता है। इसके अतिरिक्त -

"भरित नेह नवनीर नित, बरसति सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोउन, लखि नाचत मन-मोर।"[१]

में प्राचीन आचार्यों के "ब्रह्मानन्द सहोदर:" की परिपाटी के अनुसार रस के सुखात्मक रूप आनन्द प्रदायक रूप - की चर्चा की गयी है। तात्पर्य यह कि भारतेन्दु जी ने रस को अप्रत्यक्षत: काव्य की आत्मा माना है और उसके आनन्द प्रदायक रूप में उनका अटूट विश्वास है।

भारतेन्दु जी के रस विषयक विचार भी हैं। उन्होंने परम्पराविहित ६ रसों के अतिरिक्त कुछ नये रसों का भी नामकरण कर अपने नवीनता विधायक चिन्तन का परिचय दिया है। जयदेव के "गीत गोविन्द" के मंगलाचरण विवेचन में वात्सल्य हास्य, तथा माधुर्य" नामक नवीन रसों की भी स्थिति मानी है। "नाटक" में उन्होंने हास्य रस को "भक्ति रस" तथा "माधुर्य रस" को "प्रेम रस" की संज्ञा से अभिभूषित किया है। "सख्य" और "प्रमोद" (आनन्द) नामक दो नवीन रसों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार उन्होंने रसों की सरणिका निम्न रूप प्रस्तुत किया है :-

"अथ रस वर्णन - श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुद, वीभत्स, शान्ति, भक्ति, या हास्य, प्रेम या माधुर्य, सख्य या वात्सल्य, प्रमोद वा आनन्द"।[२]

इसी बात का उल्लेख पं० ताराचन्द तर्करत्न ने "श्रृंगार रत्नाकर" में इस प्रकार किया है -

"हरिश्चन्द्रस्तु वात्सल्य सख्य भक्त्यानंदाख्यमधिकं रस च ~~तुष्टय~~ चतुष्टयं मन्यते।"[३]

---

१ - तदेव द्वि० भा०, पृष्ठ - ५७७।
२ - नाटक, पृष्ठ - ३५।
३ - राधाकृष्ण ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृष्ठ - ३७५।

काव्य शिल्प :

काव्य-शिल्प के अन्तर्गत भारतेन्दु जी ने भाषा पर विचार किया है। ब्रजभाषा के पक्ष में वे कहते हैं :-

" मैंने कई बार परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊं पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी। इससे यह निश्चय होता है कि ब्रजभाषा में ही कविता करना उत्तम होता है और इसीसे सब कविता ब्रजभाषा में ही होती है।" [१]

और माधुर्य - योजना काव्य भाषा का मुख्य गुण है। " कविता के लिए मधुर शब्द आवश्यक है एवं ब्रजभाषा बहुसम्मति से मधुर भाषा है।" [२]

खड़ी बोली की असमर्थता के विषय में वे लिखते हैं :-

" मैंने इसका कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी क्यों नहीं बनती तो मुझको सबसे बड़ा यह कारण जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है इससे कविता अच्छी नहीं बनती।" [३]

परन्तु धीरे-धीरे वे खड़ी बोली की वकालत करने लगते हैं :-

" वास्तव में खड़ी बोली की कविता में मिठास के अभाव के लिए कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है। कारण कवियों में अभ्यास की कमी ही हो सकती है। ब्रजभाषा में पद्य का एक बना बनाया रास्ता था, कविता की अपनी शब्दावली थी खड़ी बोली में यह सब गढ़ना था।"

इससे प्रतीत होता है कि भारतेन्दु जी का झुकाव ब्रजभाषा की ओर अधिक था। इसके अतिरिक्त अलंकार, छन्द विषयक उनके विधान प्राचीन ही रहे।

---

१ - हिन्दी भाषा, पृष्ठ - ३।
२ - कृष्ण बिहारी मिश्र : देव और बिहारी, पृष्ठ - २५
३ - हिन्दी भाषा, पृष्ठ - १४

इस युग के अन्य कवियों ने भी अपनी काव्य दृष्टि का परिचय दिया है। इनमें प्रमुख हैं - श्री बदरी नारायण उपाध्याय चौधरी "प्रेमघन", राधाकृष्णदास, बाल मुकुन्द गुप्त, प्रताप नारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहन सिंह, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, सुधाकर द्विवेदी, रामकृष्ण वर्मा, और बलवीर आदि। इन सभी ने अपनी दृष्टिकोणों को कहीं न कहीं व्यक्त किया है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचाराभिव्यंजन "प्रेमघन" जी ने किया है। इन सभी के मतों का अध्ययन करके हम निम्न निष्कर्ष पर पहुंचते हैं :-

काव्य में समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी विचारधारा का सरस, सहज एवं मधुर आख्यान ही काव्य का स्वरूप है। रस विषयक उनकी मान्यताएं रीति कालीन ही रहीं। [१] भारतेन्दु ने ९ रसों के अतिरिक्त कुछ नव रसों का नामकरण किया। भारतेन्दु के समान "प्रेमघन" जी ने शृंगार के रसराजत्व पर जोर दिया। काव्य हेतुओं में - ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा को मुख्य तथा वर्ण्य की सम्पूर्णता, व्युत्पत्ति तथा काव्य शिक्षा को उसका सहायक तत्व माना है। काव्य प्रयोजनों में - आन्तरिक प्रयोजन (आनन्द तथा लोक हित) की विशेष रूप से तथा बाह्य प्रयोजन (यशः प्राप्ति, अर्थ-लाभ, भाषा का उपकार) का सामान्य विवेचन है। काव्य का लक्ष्य है - सदाचार प्रेरक भाव और नैतिक मूल्यों की स्थापना। काव्य का सर्वोपरि लक्ष्य है - लोकहित। वर्ण्य विषय के क्षेत्र में "उन्होंने" अपनी समकालीन सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप लोक मंगल की साधना को काव्य-वर्ण्य का आदर्श माना है।

कविता में प्रत्यक्षतः भक्ति शृंगार को तथा अप्रत्यक्षतः हास्य को महत्व मिला है। काव्य शिल्प की दृष्टि से भारतेन्दु और उनके मंडल के कवियों ने व्रजभाषा के समर्थन द्वारा पूर्वाग्रहीवृत्ति का परिचय दिया है। छन्द के क्षेत्र में काव्य को आवश्यक

---

१ - डा० सुरेशचन्द्र गुप्त, आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त, पृष्ठ -८७।

बन्धनों से मुक्त कर अनुकान्त काव्य की प्रबल मीमांसा की गयी है। बंगाल के 'पयार' और उर्दू के छन्दों का प्रयोग भारतेन्दु युग की विस्तृत काव्य-दृष्टि का परिचायक बन जाता है।

भारतेन्दु युगीन काव्य का प्रयोगात्मक पक्ष

भारतेन्दु युग के काव्य चिन्तन के उपर्युक्त विवेचन की व्यावहारिक दृष्टि को हम दो रूपों में विभक्त कर सकते हैं :-

१ - विषयगत दृष्टि और
२ - शिल्पगत दृष्टि।

विषयगत काव्य दृष्टि :-

भारतेन्दु युग में काव्य विषय का विस्तार हुआ। इससे उसमें विविधता दर्शन हुए। यह काव्य राजदरबारी नहीं जनवादी था। कविता जनगण-मन के विचारों को अभिव्यक्त करने लगी। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक विषयों की अभिव्यंजना प्रारम्भ हुई। 'इस युग के कवियों ने भक्ति और श्रृंगार परम्परा का पालन करते हुए भी देश-भक्ति, लोक-कल्याण, समाज-सुधार, मातृभाषोद्धार आदि का सन्देश सुनाया'।[१] इस युग के काव्य विषय को दो रूपों में देखा जा सकता है - परम्परागत काव्य विषय और नवीन काव्य विषय।

---

१ - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : डा० उदय भानु सिंह, पृष्ठ - ११।

परम्परागत काव्य विषय हैं - भक्ति और श्रृंगार या प्रेम विषयक कविताएं ।

(क) भक्ति विषयक वर्ण्य :-

भारतेन्दु जी ने भक्ति काव्य का प्रणयन " भक्त-सर्वस्व ", " कार्तिक-स्नान ", " वैशाख माहात्म्य ", " उत्तराधभक्तमाल " आदि में किया है । उन्होंने अपने को राधाकृष्ण का अनन्य भक्त घोषित किया है - ·

" पूजि कै कालिन्दि सपुत्तौ कोऊ, लक्ष्मी पूजि महाधन पाओ ।
सेई सरवस्ती पंडित होऊ, गनेसहि पूजि के विघुन नसाओ ।
त्यो हरिचंद जू ध्याइ शिवै कोऊ, चार पदारथ हाथ ही लाओ ।
मेरे तो राधिका नायक ही गति, लोक दोऊ रही कै नारी जाओ ।

(कार्तिक स्नान से)

यहां भक्ति मार्ग का सच्चा पथिक ज्ञान और कर्मकाण्ड की अवहेलना करता है । यही कारण है कि भारतेन्दु ने भी संध्या-पूजा, स्नानादि से क्षमा मांगी है -

संध्या जु आवु रहे घर-नीकी, नहान तुम्हें है प्रणाम हमारी ।
देवता, पित्र, क्षमो मिलि मोहि, अराधना होइ सकै न तुम्हारी
वेद पुरान सिधारो तहां, हरिचंद जहां तुम्हारी पतियारी
मेरे तो साधन एक ही है, जग नन्दलला वृषभानु-दुलारी । "

अपने आराध्य-देव की विभिन्न लीलाओं का चित्रण उन्होंने प्रीतिपूर्वक किया है । राधा कृष्ण की छवि को उन्होंने एक भक्ति की दृष्टि से की है - ·

नैन भरि देखि लेहु यह जोरी
मन मोहन सुन्दर नर-नागर श्री वृषभानु किशोरी ।
कहा कहूं छवि कहि नहि आवे वे सांवर यह गोरी

अथवा -

नैन भरि देखहु गोकुल चन्द
संग सोहर वृषभानु नंदिनी प्रमुदित आनन्द कन्द
हरिचन्द मन लुब्ध मधुपतंह पीवत रस मकरन्द ।

हरिश्चन्द जी तो व्रजनाथ की केलि-कुतूहल, में इतने तन्मय हो जाते हैं कि वे व्रजभूमि की लता-पत्र आदि बन जाना भी स्वीकार कर लेते हैं -

व्रज की लता पता मोहि कीजे ।
गोपी-पद-बंकज-पावन की रज जामे सिर भीजे

पं० प्रतापनारायण मिश्र ने भी धार्मिक वितंडावाद से उब कर अशरण शरण भगवान की शरण ली है -

झूठे झगड़ों से मेरा पिंड छुड़ाओ ।
मुझको प्रभु अपना सच्चा दास बनाओ । (प्रेम पुष्पावली- बसन्त)

माया मोह में पड़ा हुआ मन प्रभु के रूप नाम को भूला हुआ है । मिश्र जी लिखते हैं -

साधो मनुवां अजब दिवाना ।
माया मोह जनम के छगिया तिनके रूप भुलाना ।
(प्रताप-लहरी, पृष्ठ - १६)

अतः उन्होंने लोगों को जागृत रहने की शिक्षा दी है -

जागो भाई जागो रात अब थोरी
काल चोर-नहि करन चहत है जीवन धन की चोरी ।

(ख) शृंगारिक काव्य :

स्वयं भारतेन्दु की अनेक रचनाओं में – प्रेम सरोवर, प्रेमाश्रु, प्रेम तरंग, प्रेम-माधुरी आदि – में विशुद्ध शृंगार भावना कीअभिव्यक्ति हुई है। प्रेम और उसके महत्व संबंधी उनके विचार निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है :-

जिहि लहि के कछु कहन की, आसन जिय में होय।
जयहि जगत पावन करन, प्रेम वरन यह होय।

एकंगी विन्दु कारने इक रस सदा समान
पियहिं गने सर्वस्व जो, सोई प्रेम समान।

प्रेम के इसी उच्चादर्श को लेकर वे शृंगार निरूपण में प्रवृत्त हुए। उन्होंने प्रेमालम्बन में-नायिका के सौन्दर्य का वर्णन किया है परन्तु उसमें रीतिकालीन स्थूलता और अश्लीलता के संदर्शन नहीं होते। वय:संधि को प्राप्ति होती हुई एक बाला की सूक्ष्म चेष्टाओं का वर्णन अवलोकन करें :-

सिसुताई अजौ न गई तनतें, तऊ जोवन ज्योति वटोरे लगी।
सुनि के चरचा हरिचंद की कान, कछूक दै भौंहें मरोरे लगी।
वचि सासु जेठाननि सों पिय सों हुई नैनन तें हग जोरे लगी।
दुलही उलही सब अंगनितें, दिन द्वै ते पीयूष निचोरे लगी।

यहां रीतिकालीन कवियों एवं भारतेन्दु की कविता में अन्तर स्पष्ट है। बिहारी की भांति उन्होंने उरोजों की पीनता एवं कटि की क्षीणता का उल्लेख नहीं किया और उसके अंग-प्रत्यंगों की भी माप नहीं कराई। फिर भी यह वर्णन सहृदय – हृदय में "पियूष निचोड़" देता है।

भारतेन्दुकालीन प्रेम और श्रृंगार की दृष्टि ~~रीतिकि~~ रीतिमुक्त घनानन्द बोधा आदि के स्वतंत्र मार्ग पर लगी हुई है । इस प्रेम में पद-पद पर पारिवारिक एवं सामाजिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है परन्तु इससे उसमें कोई अवरोध नहीं उत्पन्न होता है । सच्चा प्रेम तो संघर्षों की आग में तपकर और निखर उठता है । भारतेन्दु की नायिका एक ओर अपनी सखियों से अपनी विवशता प्रकट करती है -

" सजनी मन पास नहीं हमरे,
तुम कौन को का समुझावति हो । "

तो दूसरी ओर वह विरोधियों को स्पष्ट उत्तर देती है -

" इन नैननि में वह सांवरि मूरति, देखति आनि अरी सो अरी ।
अब तो है निवाहिबो याको भलो, " हरीचंद " जू प्रीति करी सोकरी ।
उन खंजन के मद गंजन सों, अंखिया ये हमारी लरी सो लरी ।
अब लोग बवाव करो तो करो, हम प्रेम के कंद सो परी । "

भारतेन्दु जी के काव्य में संयोग का संयोग हुआ है परन्तु वर्णन अधिक विरह का ही है । प्रियतम के एक ही गांव में रहते हुए भी प्रेयसी दर्शन के लिए लालायित है:-

" एक ही गांव में बास सदा, घर पास इहै नहि जानति हैं
पुनि पांचवे - सातवे आवत जाय की आस न चित्त में आनति हैं ।
हम कौन उपाय करौ इनको, " हरिचंद " महा हठ ठानति है ।
पिय प्यारे बिहारे निहारे बिना अंखिया दुखिया नहि मानति हैं । "

विरह की तड़प से रोना भी व्यक्त है -

" रोय - रोय नैननि में हाले परे जलि परे
तउन लाल लाले परे रावरे दरस की । "

कहीं-कहीं तो विरह - व्यथा का विस्तार ' मरण दशा ' तक पहुंच जाता है -

' व्याकुल हौं तड़पो बिनु पीतम, कोउ तो ने कु दयाउर लाओ ।
प्यासी तजो तन रूप-सुधा बिनु, पानिय पी को दयी है पिआओ ।
जीअ में होस कछू रहि जाय न, हा ' हरिचंद ' कोऊ धावो ।
आवे न आवे पियारो अरे, कोउ हाल तो जाइ के मेरी सुनाओ ।'

प्रेम की चरमावस्था में जबकि अंह और स्वार्थ का पूर्णतः विगलन हो जाताहै और प्रत्येक स्थिति में आलम्बन के हर सम्भव व्यवहार से, प्रणयानुभूति में कोई अन्तर नहीं, आता, प्रेयसी प्रिय के दारुण दुःख को गरल की भांति चुपचाप पी जाती है । उसे किसी से कोई शिकायत नहीं वह स्वयं अपने भाग्य को दोष देती है -

' आजु लौं जो न मिले तो कहा, हम तो तुमरे सब भांति कहावें,
मेरो उराहनो है कछु नाहिं, सबै फल आपुने भाग को पावें,
जो ' हरिचंद ' भई सो भई, अब प्रान चले चहे तासो चुनावें ।
प्यारे जू है जग की यह रीति विदा को समै सब कंठ लगावे । '

इसी प्रेम के गम्भीर आदर्श को भारतेन्दु ने प्रस्तुत किया है -

' एकंगी पितु कारने इक रस सदा समान ।
प्रियहि जने सर्वस्व जो सोई प्रेम प्रमान । '

प्रेम-मार्ग की इसी गम्भीरताऔर पुनीतता को जिसे कोई नहीं समझता । बोधा ने व्यक्त किया है -

' काहिबो को विथा, सुनिबो को हंसी, को दया सुनि के उर आनति है । '

भारतेन्दु ने भी वोधा के स्वरों में उक्ति की है -

" मारग प्रेम को समुझै, " हरिचंद " यथारथ होत यथा है ।
लाभ कछू न पुकारन में, वदनाम ही होन की सारी कथा है ।
जानत है जिय मेरो गली विधि और उपाय सबै विरथा है ।
बावरे हैं वृज के सगरे, मोहि नाहक पूछत कौन विथा है । "

काव्य के नवीन वर्ण्य :

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भारतेन्दु युग में विषय का विस्तार हुआ । राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर भी कवियों ने अपनी लेखिनी चलाई । काव्य में वैविध्य का प्रवेश हुआ ।

राज भक्ति :

१८५७ के विद्रोह के बाद कम्पनी के राज्य का अन्त हो गया । चारों ओर शान्ति छा गयी । प्रजा संतुष्ट थी । जनोन्नति के अनेक कार्य सरकार ने किया । फलतः राजभक्ति की भावना उभरी । " प्रेमघन " जी ने " हार्दिक हर्षादर्श में अपनी राजभक्ति व्यक्त की है -

" धन्य ईसवी सन् अठारह सो अट्ठावन ।
प्रथम नवम्बर दिवस सितासित भेद मिटावन । "

(प्रेमघन सर्वस्व भाग १, पृष्ठ २७२)

महारानी विक्टोरिया के शासन प्रबन्ध, न्याय, दया आदि की उन्होंने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है -

शुद्ध नीति को राज प्रजा स्वच्छन्द बनायो
साचे न्याय भवन में खरो न्याय दिखरायो
देश प्रबंध, चतुर, दयालु, न्याई दुखहारी
विद्या विनय विवेकवान शासन-अधिकारी । [१]

(प्रेमघन सर्वस्व हि० २७३)

भारतेन्दु में भी यही भावना मिलती है । विक्टोरिया की प्रशंसा वे करते हैं -

पूरी अमी की क्टोरिया सी, चिर जीओ सदा विक्टोरिया रानी ।
सूरज चन्द प्रकाश करें जबलों रहे सातहु सिन्धु में पानी ।
राज करो सुख सो तबलों निज पुत्र औ पोत्र समेत सयानी ।
पालो प्रजाजन को सुख सों, जग की रतिगान करें गुन जानी । [२]

भारतेन्दु की राजभक्ति तो इस सीमा तक पहुंच चुकी है कि वे अंग्रेजों के शत्रु को अपना शत्रु मानते हैं -

धाओ धाओ वेगसब पकरि पकरि तलवार ।
लरन हेतु निज शत्रुओं चतहु सिन्धु के पार । [२]

भारतेन्दु और प्रेमघन के अतिरिक्त राधाकृष्ण दास और अम्बिकादत्त व्यास आदि ने भी राजभक्ति संबंधित काव्य लिखे ।

देश भक्ति :

जहां एक ओर ये कवि ब्रिटिश सरकार की अच्छाइयों के प्रति कृतज्ञ होकर अपने राजभक्ति का परिचय दिया, वही दूसरी ओर अकाल, महामारी, बेकारी और टैक्स

१ - प्रेमघन सर्वस्व, हि०स०, पृष्ठ- २७३ ।
२ - भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, पृष्ठ - ७६२ ।

के दुर्दान्त दन्तों से पिसती हुई जनता की दशा को देखकर इनका देशभक्त हृदय भी वीर-भावना से भर उठा :--

"जागो जागो रे महि
अबहु चेति पकरि राखो किन
जो कुछ बची बचाई।" [1]

भगवान को उद्धारहेतु पुकारते हैं -

"कहां करुणानिधि केशव सोये।
जगत नेक न जदपि बहुत विधि भारतवासी रोये।" [2]

और भी -

"रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत महि।
हा हा भारत दुर्दशा दुखी न जाई।" [3]

भारत की प्रशंसा केवल वे देश भक्ति जगाना चाहते हैं -

"जिनके भय कंपित संसारा, सब जग जिनको तेज पसारा
युरुप अमरिका इहिहि सिहाहीं, भारत भाग सरिस कोउ नाहीं।" [4]

---

१ - तदेव, पृष्ठ - ४६० ।
२ - तदेव, पृष्ठ - ५२६ ।
३ - तदेव, पृष्ठ - ४६६ ।
४ - तदेव, भाग - २, पृष्ठ - ७०७ -७०८ ।

देश प्रेम की अभिव्यक्ति में उन्होंने राष्ट्रीय एकता का आवाहन किया -

चहहु जो सांचो निज कल्यान । तो सब मिलि भारत संतान
जपो निरंतर एक जुबान । हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ।
तबहि सुधरिहै जनम निदान । तबहिं भलो करिहैं भगवान ।
जब रहि है निस दिन यह ध्यान । हिन्दी, हिन्दू हिन्दुस्तान ।

प्रताप नारायण मिश्र

धार्मिक एकता की भी बात इस युग में की गयी जो देश प्रेम का ही परिचायक है -

बंडन मंडल की बातें सब करते सुनी-सुनाई
गाली देकर हाय बनाते, वैरी अपने भाई ।
है उपासन भेद न उसके और अर्थ विस्तारों
सभी धर्म के सत्यवादी सिद्धान्त न और विचारो ।

(प्रेमघन : आनन्द अरुणोदय)

ठाकुर जगमोहन सिंह ने पौराणिक कथाओं के माध्यम से अपने काव्य में देश प्रेमोद्रेक किया है :-

याही मग है के गए, दंडक वन श्रीराम ।
तासों पावन देश यह, विन्ध्याखी ललाम ।
विन्ध्याखी ललाम, तीर तरुवर सो छाई ।
केतिक कैरव कुमद कमल के वदन सुहाई ।

(श्यामा-स्वप्न)

आर्थिक शोषण :

भारतेन्दु जी ने अंग्रेजों की शोषण नीति से क्षुब्ध होकर लिखा -

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी ।

(भा० ग्र० भा० १)

और भी -

" भीतर-भीतर सब रस चूसे, हंसि हंसि के तन मन धन मूसे
बाहिर बातिन में अति तेज, क्यों सखि साजन, नहि अंगरेज । "

(वही, मा० २)

बाल मुकुन्द गुप्त की कतिपय कविताओं में ब्रिटीशों द्वारा भारतीयों के शोषण का नग्न चित्रण मिलता है । नर कंकालों के ढेर के रूप में भारत का यह रोमांचकारी चित्रण -

" जहं तंह नर कंकाल के लगे दीखत ढेर
नरन-पशुन के हाड़सो छई चहुं फेर ।
हरे राम केहि पाप ते, भारत भूमि मंझार
हाड़न की चक्की चले हाड़न की व्योपार । "

(स्फुट कविता, " हे राम ")

पं० प्रताप नारायण मिश्र की " तृप्यन्ताम् " कविता भी इसी आर्थिक शोषण की ओर इंगित करती है । महंगी और टैक्स से परेशान जनता नाग देवता को कैसे पिलाये :

" महंगी और टिकिस के मारे, हमहि सुधा पीड़ित तन छाम ।
साग पात लौ मिले न जिय भर लेवो वृथा दूध के नाम ।
तुमहि कहा प्यावें, जब हमरो रक्त रहत गोवंश तमाम ।
केवल सुमुखि - अलक उपमा लहि नाग देवता तृप्यन्ताम् । "

(तृप्यन्ताम् : पद १६)

सामाजिक एवं धार्मिक सुधार :

सामाजिक बुराइयों ने भारत को खोखला कर रखा था । बालविवाह, सती प्रथा, स्त्री अशिक्षा आदि बुराइयों पर भी इस युग के कवियों का ध्यान गया । बाल विवाह की भर्त्सना करते हुए पं० प्रताप नारायण मिश्र ने लिखा :-

" झूठी यह गुलाब की लाली, धोवत ही मिट जाय ।
बाल -ब्याह की रीति मिटाओ, रहे लाली मुख छाय । "

(प्रताप नरायण मिश्र : होली है)

और भी -

" निज धर्म भली विधि जाने, निज गौरव को पहिचाने ।
स्त्रीगण को विद्या देवें, करि पतिव्रता यश लेवें ।"

(पं० प्रताप नरायण मिश्र : प्रेम पुष्पावली)

भारतेन्दु जी ने देश के सभी धर्मों के लोगों को खंडन मंडन से दूर रहने की शिक्षा दी है और धार्मिक एकता का मार्ग-प्रशस्त किया है :

" खंडन जग में काको कीजे
सब मत तो अपने ही हैं इनको कहा उत्तर दीजे
तासों बाहर होई कोउ जब तब कछु भेद बतावे ।

अपुने ही है क्रोधि बावरे अपुनो काटे अंग
" हरिचंद " ऐसे मतवारेन को कहा कीजे संग । "

व्यंग और हास्य काव्य :

भारतेन्दु जी में व्यंग्य और हास्य की अद्भुत प्रतिमा थी। उनके संस्मरणों से इस बात का पता चलता है। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित अंग्रेजी में (कुछ हिन्दी शब्दों के पुट के साथ) लिखी एक कविता का उदाहरण पर्याप्त होगा -

"I introduce myself to you, sir, I am poor gentleman
Take my salam, give me chair
Honour me very much if you can
I'm born in noble femily, noble parents I have too
I get chair in Lat Sab Darbar
My number is ninty two .....etc."

बाबू लोगों की मनः दशा का हास्यपूर्ण चित्रण :-

"When I go sir molakrt ko, These chaparasis
Trouble me much
How can I give daily Inam, ever they ask
Ke I say much
sometime they give me gardaniya
And tell me Bahar niklo tum
Dena na lena muft ke aya yaha hain
Bare Darbari ki dum."

'इन्दर सभा' जैसे निम्नस्तरीय नाटकों का उपहास करते हुए उन्होंने 'वन्दर सभा'

की रचना की :-

सभा में दोस्तों बन्दर की आमद आमद है,
गधे औ फूलों के अफसर की आमद-आमद है,
मरे जो घोड़े तो गदहा ये बादशाह बना,
उसी मसीह के पैवर की आमद आमद है ।

नये जमाने की मुकरी में उन्होंने अंग्रेज, पुलिस, किताब आदि पर तीखे व्यंग किये हैं :-

कपट कटारी जिय में हूलिस, क्यों सखि सज्जन, नहि सखि पूलिस ।

स्वच्छन्दतावादी काव्य :

उपयुक्त वर्णन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु युग में काव्य जीवन के समीप आ चुका था, वह जनतांत्रिक काव्य के दो रूप हुए - एक विशुद्ध समाजोपयोगी, दूसरा आत्माभिव्यंजक । भारतेन्दु जी में हम दो प्रकार की शैलियों का व्यवहार पाते हैं । उनकी भावावेश की शैली दूसरी है और तथा निरूपण की शैली दूसरी [१] तथा निरूपिणी कविताएं समाज के दिशा-निर्देश के लिए लिखी गयी और भावावेश की कविताओं में कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों के चित्रण किये गये । जीवन- जगत के जिन विषयों में कवि का संवेदनशील हृदय अधिक रमता है उसकी भावुक शैली में अभिव्यक्ति ही स्वछंदतावादी काव्य को जन्म देती है ।

---

१ - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृष्ठ - ४६२-६३, आठवां संस्करण ।

भारतेन्दुयुग ने इस स्वच्छन्दतावाद के संदर्शन अंग्रेजी काव्यों के अनुवादों से प्रारम्भ होता है। इसके प्रथम प्रस्तोता है पं० श्रीधर पाठक। १८८५ ई० में गोल्डस्मिथ के 'दहरमिट' का अनुवाद श्रान्त पथिक नाम से, १८८६ ई० में 'डिज़र्टेड विलेज' का अनुवाद उजड़ा ग्राम नाम से और १६०२ में 'द ट्रेवेलर' का अनुवाद 'श्रान्त पथिक' नाम से किया। ये तीनों काव्य क्रमशः प्रेम, करुणा और दर्शन की सृष्टि करते हैं। प्रेम और करुणा मानव-जीवन के अत्याधिक संवेद्य भाव है। जीवन की समस्त समस्याओं का संबंध इन्हीं दोनों से है। ये दोनों जीवन और जगत के शाश्वत प्रश्न है जिनका समाधान दर्शन से होता है। अतः इस काव्य की अंतिम परिणति दर्शन में होती है और यह काव्य रहस्यवाद की सृष्टि करता है। पाठक जी ने प्रकृति में पुरन्दर के दर्शन किये जो आगे छायावादी कविता में अज्ञात सत्ता के छायाभास के रूप में प्रकट हुई -

'यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर।
यही अमरन को ओक यही कहुं वसत पुरन्दर।' काश्मीर सुषमा -

प्रकृति उस ब्रह्म की कृति है -

'ध्यान लगाकर जो देखो तुम सृष्टी की सुघराई को
बात-बात में पावोगे उस ईश्वर की चतुराई को।'
(जगत सचाई सार)

श्रीधर पाठक की कविता में स्वच्छंदतावाद के तीनो गुण - अभिव्यंजना, वैशिष्ट्य, प्रकृति निरीक्षण की नवीन शैली और आत्मानुभूति - मिलते हैं। पाठक जी के काव्य में दीन दुखियों के प्रति संवेदना की गहरी अभिव्यक्ति है। 'मेघागम' कविता में मेघों के घिरने के चित्रण के साथ ही बाल विधवा की भावनाओं का स्मरण

हो उठता है -

" अंधियारीरात, हाथ न दिखात, बिन नाथ बाल विधवा डरात । "

स्वच्छंदतावादी कविता की इन समस्त विशेषताओं का विश्वास छायावादी काव्य में हुआ जिसका प्रारम्भिक रूप पाठक जी के काव्य में है ।

" इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद का आभास पहले पहल पं० श्रीधर पाठक ने दिया उन्होंने प्रकृति के रूढ़िबद्ध रूपों तक ही न रहकर अपनी आंखों से भी उसके स्वप्न को देखा " [१]

गोल्डस्मिथ के अतिरिक्त ग्रे (Gray) की प्रसिद्ध " एलेजी " का सफल अनुवाद कामता प्रसाद गुरु ने १९१० में प्रस्तुत किया । " प्रेमघन " जी ने भी गोल्डस्मिथ से प्रेरित हो काव्य रचना की जिसमें ग्राम जीवन, प्राकृतिक सौन्दर्य और ग्राम पाठशाला आदि के वर्णन किये हैं । अपनी मानवतावादी कविता में उन्होंने ग्रामिणों पर जमींदारों व उनके कर्मचारियों के अत्याचारों का वर्णन किया है -

" कहलावत दीवान, दया की बानि बिसारी
बाकी लेत चुकाय, छनहिं में माल गुजारी । "

(प्रेमघन सर्वस्व, भाग १)

ग्रामों की बेकारी निर्धनता, शारीरिक और मानसिक अधःपतन का नीचे वर्णन करते हैं । [२]

" अतः कतिपय विचारक इस युग को स्वच्छन्दतावाद की पृष्ठभूमि मानते हैं । " [३]

---

१ - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६०३, तेरहवां संस्करण ।
२ - राम विलास शर्मा - भारतेन्दुयुग, पृष्ठ - १६३ ।
३ - हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा : डा० राम अवध द्विवेदी, पृष्ठ - ५८ ।

कुल मिलाकर भारतेन्दु युगीन कविता में काव्य दृष्टि वर्ण्य के परम्परागत विषय - श्रृंगार, भक्ति और प्रेम पर ही नहीं अपितु वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति और जनतांत्रिक उदारवाद पर भी थी । इस प्रकार इस युग का वर्ण्य क्रमशः विकासशील था; जिसमें वर्णन वैविध्य और विषय विस्तार था । अतः - भारतेन्दु का यह कथन कि काव्य के विषय लौकिक व अलौकिक दोनों हो सकते हैं, यहां पूर्ण रूपेण उचित प्रतीत होता है ।

काव्य के रूप

भारतेन्दु युग पूर्व रीतिकालीन काव्य में केवल मुक्तकों की रचना होती रही । भारतेन्दु युग में काव्य रूपों में नवीनता आने लगी । इस युग मे प्रबन्ध काव्यों का अभाव सा रहा । 'जीर्ण जनपद', 'वंसबध' (अपूर्ण), 'कलिकाल -दर्पण', होली की नक्ल', एकान्तवासीयोगी', 'ऊजड़ग्राम'; आदि इनी गीनी रचनाएं प्रबंध कविता की दृष्टि से निम्न श्रेणी की है । इनका मूल्य खड़ी बोली प्रबन्ध काव्य के इतिहास की पीठिका रूप में ही है ।[१] जो भी हो ये काव्य प्रबन्ध काव्य तो हैं ही भले ही ये प्रबन्ध काव्य की कसौटी पर खरे न उतरे । अतः भारतेन्दु युग के काव्य रूप का प्रथम रूप प्रबन्ध काव्य है ।

इस युग का दूसरा काव्य रूप है - पद्यात्मक निबन्ध । 'बुढ़ापा', जगत सचाई-सार', 'सपूत', 'गोरदा' आदि पद्यात्मक निबंधों में गीत मुक्तकों की मार्मिक अनुभूति का आभास है । कथासूत्र तथा विषय की एकतालना के कारण प्रबन्ध-व्यंजवता भी है । अतः इन्हें पद्यात्मक निबंध कहना उचित ही है ।

---

१ - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डा० उदय भानु सिंह * पृष्ठ १४/

इस युग में कुछ गीत मुक्तकों की भी रचनाएं हुईं। भले ही ये प्रचारात्मकता और उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति के कारण आधुनिक गीत मुक्तकों की श्रेणी में न आ सकें परन्तु गीत मुक्तकों के प्रारम्भिक प्रयास के रूप में ये स्तुत्य हैं। भारतेन्दु के गीतों में रीतिकाव्य के सभी गुण भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता, संक्षिप्तता एवं कोमलता मिलते हैं। अवलोकन करें -

सखि ये नैना बहुत बुरे।
तब सों गये पराये हरि सों जब सों जाइ जुरे।
मोहन के रस बस है डोलत तलफत तनिक दुरे।
मेरी सीख प्रीत सब छांड़ी ऐसे ये निगुरे।
जग खोइयो वरज्यो पै एनहि हठ सो तनिक मुरे।
'हरिचंद' देखत कमलन से विष से छूटे छुरे।

इन गीतों पर भक्तिकालीन काव्य का भी प्रभाव दृष्टव्य है। भारतेन्दु युग में कुछ गीत मुक्तकों की रचना अंग्रेजी काव्य के प्रभाव में भी हुई। काव्य के नये रूपों की सृष्टि हुई। यहां उनका वर्णन किया जा रहा है -

(१) शोक गीति (Elegy) :

आंग्ल काव्य में एलेजी काव्य का एक रूप है जो 'एलेजाइक' छन्द में लिखा जाता है। इसमें कवि का व्यक्तिगत शोक या विलाप अभिव्यक्ति पाता है।[१] इसमें किसी की मृत्यु मुख्याधार होती है। इसी को लेकर कवि अनेक विषयों पर मनन करता है जैसे वह पार्थिव और अपार्थिव जगत का वर्णन करता है और कभी-कभी

---

१ -

Elegy- "A poem either of lament for a person, of persons of serious musing." Cassell's Encyclopaedia of Literature page 178.

or

"As a funeral song or lament".

J.P. Shipley: Dictionary of World Literature; pg. 111.

पूर्णदार्शनिक बन जाता है । ' एलेजी ' के अंतिम भाग में शान्त्वना होती है जैसे मिल्टन के ' लिसिडास ' (Lycidas) शेली के ' एडोनिस ' (Adonais) में व्यक्त हुई है । आंग्ल काव्य में इसकी एक लम्बी परम्परा है ।

भारतेन्दु युग के कवियों में ' प्रेमघन ' जी ने 'शोकाश्रुविन्दु' नामक शोक गीत लिखा । यह उनके परम सुहृद भारतेन्दु जी की मृत्यु पर लिखा गया । इसकी कतिपय पंक्तियां यहां द्रष्टव्य है -

" अथयो हरिचन्द अमन्द सो भारत चन्द चहूं तम छाय गयो ।
तरु हिन्दुन के हित उन्नति को बढ़ते अबही मुरझाय गयो ।
गुन राशि जवाहिर की गठरी अनमोल सो कौन उठाय गयो ।
नित जाने गरूर से चूर रह्यो वह हिन्द ते हाय हे राम गयो । "

प्रेमिन को जो प्रानधन रसिकन को सिरताज ।
कविता को तो डूबिगो मानहुआन जहाज ।

हाय प्रेम को आज जो, वन्द भयो टकसाल ।
हाय रासक्ता मानसर को उड़ि गयो कहां मराल ।

(प्रेम घन सर्वस्व : शोकाश्रुविन्दु, पृष्ठ)

इसके अरिक्ति पं० श्रीधर पाठक, बालं मुकुन्द गुप्त ने भी शोक गीतों की रचना की । [१]

---

१ - हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव : डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा, पृष्ठ - ८१ ।

(२) ओड (Ode) संबोधन गीति :

आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार यह गाने के उद्देश्य से लिखी गयी गीति है जो तुकान्त अथवा अतुकान्त ढंग से, संबोधन शैली में ५० से दो सौ पंक्तियों में हो सकती है।[१] भारतेन्दु जी ने कुछ संबोधन गीतों की सृष्टि की। उनकी 'वैजयन्ती विजय पताका' 'भारत शिक्षा' और 'भारतवीरत्व' इसके उदाहरण हैं। ये सभी संबोधन गीत सीधे आंग्ल प्रभाव में नहीं प्रणीत हुए। इन पर आंग्ल प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है, जैसे हेमचन्द बनर्जी द्वारा प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन पर कविता का आधार लिए हैं उनकी 'भारत शिक्षा'।

(३) सानेट (Sonnet) :

अंग्रेजी काव्य में १४ पंक्तियों की एक कविता है जो कवि के शान्त क्षणों में स्मृत विचारों और भावनाओं व अनुभव का एक स्पष्ट रूप खण्ड होता है जिसमें एक विशिष्ट तुक-योजना होती है। यह गीति काव्य का एक विशिष्ट रूप है जिसका अनुभव इटली में हुआ। अंग्रेजी में पेट्रार्क, शेक्सपीयर, एलिजावेथ युगीन सानेट, वर्ड्सवर्थ आदि के सानेट या चतुष्पदियां अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनकी लय और तुक व्यवस्था भी कवियों की अपनी अपनी है। इस प्रकार की कविताएं भारतेन्दु युग में भी प्रणीत हुईं। अपने 'श्रान्त पथिक' में श्रीधर पाठक ने १४ पंक्तियों की एक कविता समर्पण (Dedication) के रूप में लिखी।

---

१ - Ode: Any serious lyric expressing aspiration or addressed to a venerated person: Cassell's Encyclopaedia of Literature, pp. 399.

(४) व्यंग्य काव्य (Satire) :√

इस युग में काव्य व्यंग्य प्रधान काव्य भी लिखे गये । अंग्रेजी काव्य - जगत अपने व्यंग्य के लिए प्रसिद्ध है ही । अठारहवी शताब्दी के क्रोसिकल साहित्य में व्यंग्य काव्यों की एक दीर्घ परम्परा है । जोनाथन स्विफ्ट (Jonathan Swift) का ' गुलीवर्स ट्रेवेल ', ' बेटल आफ द बुक्स ' आदि एडीसन काव्य और ' स्टील ' के ' टेटलर ' आदि में, ड्राइडन के ' मेकफ्लेकनो ', ए० पोप के ' डन्सीयड ' ' रेप आफ दी लाक ' में व्यंग्य काव्य की महती परिणति है । लगता है इनका प्रभाव इस युग के साहित्य पर पड़ा । आंग्ल कवियों की भांति इन कवियों ने भी अपने व्यंग्य का लक्ष्य सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक सुधार रखा ।

' नये जमाने की मुकरी ' में उन्होंने अंग्रेज, पुलिस, किताब पर तीखे व्यंग्य किये है -

' भीतर भीतर सब रस चुसे, हंसि हंसि के तन-मन-धन मूसे ।
वाहिर वातिन में अति तेज; क्यों सखि साजन, नहिं अंगरेज । '

' कपट कटारी हिय में हूलिस, क्यों सखि सज्जन, नहि सखि, पूलिस । '

' इनकी उनकी खिदमत करो, रूपया देते देते मरो
तब आवे मोहि करन खराब, क्यों सखि सज्जन, नहीं किताब । '

इसी प्रकार भारतेन्दु जी ' सन्तो देखी तुमरी कासी । ' में अच्छा व्यग्य है । उनके नाटक में भी समाज-देश की बुराइयों पर करारे व्यंग्य हैं । पं० प्रतापनरायण मिश्र की ' तृप्यन्ताम् ' कविता सम्भवत: हिन्दी के व्यंग्य-काव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है ।

(५) वर्णनात्मक काव्य :

अंग्रेजी काव्य के प्रभाव के परिणाम स्वरूप हिन्दी में एक ओर नई शैली के वर्णनात्मक काव्य रूप का श्री गणेश हुआ । इस काव्य में चरित्रों और स्थानों के वर्णन के साथ मनन, हास्य तथा व्यंग्य भी रहता था । श्रीधर पाठक के 'श्रान्त पथिक' तथा 'उजड़ ग्राम' अनुवादों से इस प्रकार के वर्णनात्मक काव्यों की रचना प्रारम्भ हो गयी ।' १

'प्रेमघन' जी की 'जीर्ण जनपद' कविता इसका सुन्दर उदाहरण है ।

'सो सब सपने की सम्पत्ति सम अब न लखाहीं
कहूं कछू हू वा साचे सुख की परिछाहीं
अब नहिं वरषा गम हो वैसे आंधी आवे
नाहि घन अठवारन लौ वैसी झरी लगावे
नहि वैसे, जाड़ा वसन्त नहि ग्रीष्म हूं तस
आवत मनहि लुभावत हरखावत आगे कस
नहि वैसे लखि परत शस्य लहरत खेतन में
नहि बन में वह शोभा, नहि विनोद जन-मन में ।'

(प्रेम घन सर्वस्व : जीर्ण जनपद)

इस प्रकार जहां तक काव्य रूपों का संबंध है, भारतेन्दु ने हिन्दी में अंग्रेजी के ढंग पर सर्वप्रथम निबंध-काव्यों, कथा काव्यों एवं संबद्धमुक्तकों का सृजन किया और प्रबन्ध काव्यों को छोड़कर परम्परा से चले आते हुए प्रायः सब प्रकार के मुक्तकों की सृष्टि उन्होंने की । ये नये काव्य रूप भारतेन्दु की बहुत बड़ी देन है जिनका आगे चलकर प्रचुर अनुकरण हुआ ।' २

---

१ - हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव : डा० रवीन्द्र सहाय, पृष्ठ - ८२ ।
२ - भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवि, पृष्ठ - ३२५ ।

शिल्प-दृष्टि

भाषा शैली :

इस काल में तीन प्रकार की भाषा-शैलियां थी -

१ - प्राचीन परम्परानुसार व्रजभाषा
२ - शुद्ध खड़ी बोली और
३ - व्रज भाषा और खड़ी बोली का मिश्रित रूप अथवा खड़ी बोली, प्रान्तीय बोलियों, उर्दू और अंग्रेजी शब्दों के मिश्रित रूप ।

युग-प्रवर्तक बाबू हरिश्चन्द्र तो व्रजभाषा को ही काव्योपयुक्तभाषा मानते थे वे केवल गद्य में खड़ी बोली भाषा लिखने के पक्षपाती थे । उस समय प्राय: नवीन विषयों पर ही विशेष रूप से खड़ी बोली में कविता लिखी जाती थी । ज्यों ज्यों पुराने विषय छूटते गये और नये विषय काव्योपयुक्त बनते गये, त्यों-त्यों व्रजभाषा का मोह भी हटता गया और खड़ी बोली का व्यवहार बढ़ा ।[१] भारतेन्दु युग में खड़ी बोली पद्य साहित्य के निर्माण में तो व्यवहृत न हो सकी तथापि इस कार्य के लिए आधार आलोच्यकाल में ही निर्मित हो गया था । भारतेन्दु ने खड़ी बोली में कविता करने का प्रयास किया था, यद्यपि इसमें उनको अधिक सफलता नहीं मिल सकी थी ।[२] तत्कालीन भाषा में प्रान्तीय बोलियों के अतिरिक्त उर्दू, अंग्रेजी के शब्द और अनूदित मुहावरे भी मिलते हैं । व्यंग्य के लिए अंग्रेजी और उर्दू शब्द भी प्रयुक्त हुए ।

---

१ - हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास : डा० हरदेव बाहरी, पृष्ठ, १६६ ।
२ - भारतेन्दुयुगीन नाट्य साहित्य : डा० भानुदेव शुक्ल, पृष्ठ - ५४ ।

इस काल में काव्य - भाषा - दृष्टि उदारवादी हो उठी थी । वह अपने श्रृंगार कालीन व्रजभाषा के व्यामोह को उतार फेंक रही थी और विविध प्रान्तीय भाषाओं के प्रति उदारवादी नीति का परिपालन कर रही थी । उदाहरणार्थ -

बंगाली - " निभृत निशी थे सई ओ वांशी बाजिल,
पूरित करिया बन भेदिया गगन धन ।

हरिश्चन्द्र श्याम - वांशी -स्वर कामदेव फांसी,
कुल बधु सुनियाई आर्य-पथ व्याजिल ।

(भा० ग्र० १।२१८)

पंजाबी - " बेदरदी बे लड़िवे तेंड़े नाल ।
वेपरवाही वारी जी तू मेरा साहबा असी इत्थों विरह-विहाल
चाहने वाले दी फिकर न तुझ नूं जल्लों दा ज्वाब न स्वाल
" हरिचंद " ततवीर ना मुझदी आशक बेतुल-माल । " [१]

राजस्थानी - बिहारी जी कांई छे तुम्हारो यहां काज ।
तुम सौतिन रे मद रा मात्या, रंग रंगीला साज ।
रैन बसे जहां वहीं सिधारो म्हाने तो लाने छे घणी लाज ।
" हरिचंद " थोर चरन्न लागूं छिमा करो महाराज । " [२]

इस प्रकार भारतेन्दु युग की भाषा दृष्टि भी विस्तारवादी या उदारवादी हो रही थी ।

१, २ - साहित्यिक निबंध : डा० प्रतिचन्द्र गुप्त : प्रथम संस्करण, ५६० पृष्ठ ।

और यहां इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि भारतेन्दु युग ही में खड़ी बोली भाषा को पद्य का माध्यम बनाने का आन्दोलन प्रारम्भ हो जाता है। खड़ी बोली का काव्य क्षेत्र में वस्तुत: सच्चा संचार भारतेन्दु बाबू ने ही किया। उनसे ही प्रभावित होकर उनकी मित्र-मण्डली के कतिपय कवियों ने खड़ी बोली में रचनाएं की और इस प्रकार खड़ी बोली को काव्य के क्षेत्र में आगे बढ़ाने का सफल प्रयत्न किया।" [१]

छन्द :

चूंकि भारतेन्दु युग एक सांक्रान्तिकाल (Transitional period) है। अत: इसमें प्राचीनता और नवीनता दोनों की संधि है। छन्दों के क्षेत्र में भी यही बात चरितार्थ होती है। भक्तिकाल व रीतिकाल के प्रमुख छन्द - कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई, मालिनी, द्रुतविलम्बित - भारतेन्दु युग में भी मिलते हैं। नवीन विषयों के आगमन से नवीन छन्दों का भि आविर्भाव हुआ। रोला, छप्पय और समस्या-पूर्तियों के लिए घनाक्षरी और सवैया को विशेष स्थान मिला। इस युग में साहित्य जनवादी हो गया था। अत: उर्दू और लोक-प्रचलित भाषाओं के छन्दों का भी स्वागत हुआ। लावनी, गजल, रेखता, कजली और कबीर छन्दों के सफल प्रयोग हुए। जातीय संगीत का गांव-गांव के साधारण लोगों में प्रचार करने के लिए भारतेन्दु जी ने कजली, ठुमरी, खेमटा, कहरवा, गजल, अद्धा, चैती, होली, साकी लाम्बे, लावनी, बिरहा, चनैनी इत्यादि छन्दों को अपनाने पर जोर दिया था। उन्होंने लिखा था - "उत्साही लोग इसमें जो बनाने की शक्ति रखते हैं वे बना दें, जो छपवाने की शक्ति रखते हैं वे छपवा दें और जो प्रचार की शक्ति रखते हैं वे

---

१ - आधुनिक ब्रजभाषा काव्य : पं० शुकदेव बिहारी, पृष्ठ - ३, प्राक्कथन।

प्रचार करें । मुझसे जहां तक हो सकेगा, मैं भी करूंगा ।" [१] बंगाल के 'पयार छन्द' का प्रयोग अवलोकनीय है -

'मन्द मन्द आवे देखो प्रात समीरन ।
करत सुगन्ध चारो ओर विकीरन
गात सिहरात तन लगत शीत
रैन निद्रालस जन सुखद चंचला ।' (भा०ग्रं० २, पृष्ठ - ६८६)

भारतेन्दु ने कुछ बंगला गीतों की भी संसृष्टि की है । यहां काव्य का कोई छन्द विधान नहीं है । दोहा और कजली का प्रयोग संस्कृत में भी मिलता है । संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ 'मिर्जापुरी कजली' का रसास्वादन भारतेन्दु के इन पंक्तियों में करें -

'हरि हरि हरि रिह विहरति कुंजे मन्मथ मोहन बनमाली ।
श्रीराधा या समेतो शिखिशेत्पर शोभाशाली ।
गोपीजन विधु वदन-वनज वन मोहन माया पत्राली ।
गायति निज दासे हरिचन्दे गल साजक माया जाली ।'

'प्रेमघन' जी ने खड़ी बोली में शायरी कजली के छन्दों का प्रयोग किया :-

'हुआ प्रबुद्ध बुद्ध भारत निज आरत दशा निशा-का ।
अंत समझ अतिशय प्रभुदित हो तनिक तब उसने ताका ।
अरुणोदय एकता दिवाकर प्राची दिशा दिखाती ।
देखो नव उत्साह परम पावन प्रकाश फैलाती ।'
(प्रेमघन सर्वस्व : आनन्द अरुणोदय)

---

१ - हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां : डा० जय किशन प्रसाद खण्डेवाल,
पृष्ठ - ३६७-६८ ।

इस प्रकार छन्दों में भी कतिपय नवीनता के संदर्शन होते हैं ।

कुल मिलाकर, भारतेन्दु युग में काव्य दृष्टि वाह्य विषयोन्मुखी, विकास वैविध्यपूर्ण, विस्तारमयी और कतिपय अभिनव प्रयोगवादी थी - विषय, भाषा, छन्द आदि सभी क्षेत्रों में । इस काव्य दृष्टि में विज्ञान, तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों ने योगदान दिया । यद्यपि काव्य और उसका आत्मा, काव्य विषय और उसके उद्देश्य आदि तो प्राचीन काव्यशास्त्रीय परम्परा के ही अनुरूप रहे परन्तु इस युग की नवीनता वादी दृष्टि ने काव्य दिगन्त के विस्तार के साथ ही अभिनव काव्य रूपों और खड़ी बोली के सन्निवेश द्वारा काव्य जगत में नवयुग का द्वार खोला । इसीलिए कतिपय विचारकों ने इस युग को स्वच्छन्दतावाद का पृष्ठभूमि माना है ।[१]

---

१ - हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा: डा० राम अवध द्विवेदी : पृष्ठ ५७-५८।

ख - द्विवेदी युग और काव्य दृष्टि

---

१ - युग और प्रेरक शक्तियां :

भारतेन्दु युग के अवसान के बाद "द्विवेदी युग" का आविर्भाव होता है। भारतेन्दु युग में काव्य दृष्टि प्राचीन एवं परम्परावादी ही थी यद्यपि उसकी नवीनता एवं उदार विस्तारवादी प्रवृत्ति का सदर्शन होने लगा था। "अधिकांश भारतेन्दु-युगीन कविता शृंगारिक ही थी और वह रीतिकालीन काव्य की परिपाटियों को पूर्णतया छोड़ने में समर्थ न हो सकी। किन्तु इन पुरानी प्रवृत्तियों के साथ ही काव्य का नवीन जनवादी आन्दोलन भी भारतेन्दु युग में आगे बढ़ रहा था। द्विवेदी-युग में इस नई काव्यधारा का उद्रेक बड़े वेग से हुआ, जिसके फलस्वरूप पुरानी धारा लुप्त-प्राय सी हो गयी।"[१]

हिन्दी काव्य की इस नयी काव्य-धारा के उन्मेष में तद्युगीन परिस्थितियों का बहुत ही हाथ रहा। यहां हम अत्यन्त संक्षेप में उनका आकलन करेंगे।

प्रेस और पत्रकारिता :

१९वीं सदी के प्रथम दो दशकों में उच्चकोटि की पत्रकारिता के फलस्वरूप ही "इन्दु", "सरस्वती" और "मर्यादा" आदि पत्रिकाएं अस्तित्व में आयीं और महान साहित्यिक संयोग हुआ। १९०२ में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने "सरस्वती" का सम्पादन किया और मैथिलीशरणगुप्त, उनके अनुज श्री सियाराम शरण गुप्त, कामता प्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय और गया प्रसाद शुक्ल "सनेही" प्रभृति कवि इसी के माध्यम से चमक उठे।

---

१ - हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव : डा० रवीन्द्र सहाय, पृष्ठ - ८६।

सरस्वती के बाद 'इन्दु' का सम्पादन १९११ में हुआ। इसके सम्पादक के रूप में जयशंकर प्रसाद जी हमारे समक्ष आये और उनके प्रसाद से हिन्दी काव्य के नवयुग - छायावादयुग- की पृष्ठभूमि निर्मित हुई।

इस प्रकार इन दो पत्रिकाओं ने हमारे साहित्य की अभिवृद्धि और उसे नवीन दृष्टि प्रदान करने में बड़ी सहायता की।

सांस्कृतिक आन्दोलन :

पिछले अध्याय में हमने नवीन सांस्कृतिक परिस्थितियों की चर्चा की है। ये सांस्कृतिक परिस्थितियां इस युग में भी बल हो रहा था। भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना, रेल, तार, डाक, समाचार-पत्रों, नवीन वैज्ञानिक उपकरणों ने विश्व को छोटा बनाकर एक परिवार में परिणत कर दिया। विश्व का मुख्य विचारधारायें एक दूसरे के सम्पर्क में गयीं। परिणामतः भारत में भी एक नवीन संस्कृति का अभ्युदय हुआ। ब्राह्म समाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना-समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि का सम्मेलित प्रभाव हमारी संस्कृति और साहित्य पर पड़ा। अनेक परिवर्तन हुए और हिन्दी साहित्य ने अपने अंगों का विस्तार किया। 'सरस्वती' पत्रिका में इस सांस्कृतिक आन्दोलन का झलक मिलती रहा। द्विवेदी जी ने फरवरी-मार्च १९०३ के 'सरस्वती' अंक में रामकृष्ण पर लेख लिखा तो ज्वालादत्त शर्मा ने १९१४ में राजाराम मोहन राय पर। द्विवेदी-युगीन साहित्य में इस सांस्कृतिक प्रभाव के चिन्ह मिलते हैं।

राजनीतिक परिस्थितियां :

१८८५ में भारतेन्दु जी दिवंगत हुए। उसी वर्ष भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। प्रारम्भ में तो यह उच्चकुलीन व्यक्तियों की एक ऐसी संस्था थी जो अवकाश के क्षणों में उनका मनोरंजन कर सके, परन्तु धीरे-धीरे यह राष्ट्रीय रूप लेती गयी। १९०५ में बंग भंग आन्दोलन हुआ और राष्ट्रीयतापरक विचारों को बल मिला।

१६०४ में रूस और जापान की लड़ाई हुई । इसमें जापान की विजय ने पूर्व के देशों में नवस्फूर्ति का संचार किया । भारत एवं भारतीय साहित्य इससे अछूते न रहे । 'सरस्वती' पत्रिका ने तो नवम्बर १६०४ में 'जापान टाइम्स' में प्रकाशित एक जापानी युद्धगीत का हिन्दी अनुवाद ही प्रस्तुत कर डाला । इस प्रकार राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाओं ने हमारे साहित्य में राष्ट्रीय विचारों को जन्म दिया ।

अंग्रेजी शिक्षा :

इस समय तक भारत में कई विश्वविद्यालयों की स्थापना हो चुकी थी । सन् १८५७ में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई । १८८२ में पंजाब तथा १८८७ में प्रयाग विश्वविद्यालय खुला । इनमें अंग्रेजी शिक्षा की व्यवस्था थी ही । फलत: भारतीय जन होमर, वर्जिल, दान्ते, शेक्सपियर, मिल्टन, पोप, ड्राइडन, ग्रे, काउपर, वर्ड्सवर्थ, कीट्स आदि की कृतियों से परिचित हो उठा । 'सरस्वती' में समय-समय पर इनके विषय में लेख भी प्रकाशित हुए । अत: इन पाश्चात्य साहित्यकारों का हमारे साहित्य पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था ।

साहित्यिक संस्थाएं और सभाएं :

हिन्दी के प्रचारार्थ जगह-जगह सभाएं और संस्थाएं भी स्थापित की गयीं । बाबू श्यामसुन्दर दास ने १६ जुलाई १८९३ ई० को 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की । १९१० में हिन्दी की अभिवृद्धि हेतु 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना हुई ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्यों का प्रभाव :

द्विवेदी युग को प्रभावित करने वाला मुख्य भारतीय भाषा का साहित्य है - बंगला । माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाद वध', नवीन चंद्र सेन के 'पलासीर युद्ध' का अनुवाद श्री मैथिलीशरण गुप्त ने प्रस्तुत किया । रवीन्द्र नाथ टैगोर का प्रभाव भी कम नहीं रहा । गुप्त जी के अतिरिक्त श्री सियारामशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय, गिरधर शर्मा आदि भी टैगोर के प्रभाव में थे ।

निष्कर्षतः द्विवेदी युगीन सांस्कृतिक परिस्थिति ने विश्ववाद का उद्रेक किया तो राजनीतिक परिस्थिति ने राष्ट्रीयता और बांग्ल साहित्य ने स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण को बागृत किया । इस प्रकार सबके सम्मिलित प्रभाव से उस युग का साहित्य निर्मित हुआ । जिसकी दृष्टि, अवधारणाएं और सिद्धान्त सभी पूर्ववर्ती युग से भिन्न हो उठे ।

२ - द्विवेदी युगीन काव्य दृष्टि : सैद्धान्तिक पक्ष

काव्य का स्वरूप :

द्विवेदी युग के प्रमुख रत्न थे - महावीर प्रसाद द्विवेदी । उन्होंने काव्य विषयक विचारों का निरूपण यत्र-तत्र अपने निबन्धों में तथा कहीं-कहीं अपनी कविताओं में किया है । उनके काव्य विषयक विचार उस युग की काव्य-दृष्टि का प्रतिनिधित्व करते हैं । अतः यहां उन्हीं के विचारों का अवलोकन किया जा रहा है ।

काव्य या कविता की परिभाषा द्विवेदी जी ने इस प्रकार की है:-

'अन्तः करण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है ।'[१]

---

१ - रसज्ञ रंजन ; पृष्ठ - ६२ ।

पुनः उन्होंने कहा है - 'ज्ञान राशि के संचित कोष ही का नाम साहित्य है।'[१] उपरोक्त परिभाषाओं को अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि उन्होंने अन्तःकरण की वृत्तियों के चित्र का नाम लेकर कविता की मौलिक परिभाषा की है। यहाँ उनका झुकाव काव्य के बहिरंग की ओर न होकर अन्तरंग की ओर है। काव्य में अन्तःकरण की वृत्तियों के चित्र होने चाहिए। इस परिभाषा में बाह्य वर्णन से भिन्न अंतरंग वर्णन पर बल है। एक स्थल पर काव्य के स्वरूप की विवेचना करते हुए वे कहते हैं:-

> 'सुरम्य रूपे रसराशि रंजिते विचित्रवर्णाभरणे कहाँ गयी
> अलौकिकानन्द विधायिनी महाकवीन्द्रकान्ते कविते अहो कहाँ
> सुरम्यता ही कमनीय कान्ति है, अमूल्य आत्मा रस है मनोहरे
> शरीर तेरा सब शब्द मात्र है, नितान्त निष्कर्ष यही, यही, यही।'[२]

उनके गद्य निबन्ध - कवि बनने के सापेक्ष साधन, 'कवि और कविता', 'कविता' आदि - भी उपर्युक्त लक्षण की पुष्टि करते हैं। इस प्रकार उन्होंने काव्य की परिभाषा में भी संस्कृत साहित्य शास्त्रियों के काव्य लक्षणों का ही निष्कर्ष मात्र निकाला है।[३] कविता को कान्ता का उपमेय मानना संस्कृत के साहित्यकारों की परम्परागत साधारण बात है -

'अनेन वाग्मर्थ विदामलंकृता विभाति नारीव विदग्ध मंडला।' (भामह, ३, ५७)

तथा -

'यामिनीवेन्दुना मुक्ता नारीव रमणं विना।
लक्ष्मीरिव ऋते त्यागान्नो वाणी भाति नीरसा' (रुद्र भट्ट: श्रृंगार तिलक)

---

१ - सम्मेलन पत्रिका, चैत्र-वैशाख सं० १९९०, पृष्ठ - २०७।
२ - द्विवेदी काव्यमाला: पृ० - २९१ - २९५।
३ - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग: डा० उदयभानु सिंह, पृष्ठ-९३।

संस्कृत के आचार्यों ने `शरीरतावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली` - (दण्डी:काव्यादर्श) आदि उक्तियों के द्वारा काव्य के शरीर का उल्लेख किया है । आनन्दवर्द्धन, अभिनवगुप्त, और विश्वनाथ आदि ने बहुत पहले ही रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया था । आनन्दवर्द्धन, पंडित राज जगन्नाथ ने काव्यगत रम्यता को उसकी कान्ति माना है । `विविध वर्णाभरणालंकृति` आदि प्राचीन कथनों के आधार पर ही द्विवेदी जी ने अलंकृत वर्णों को कविताकान्ता का आभरण कहा है । द्विवेदी जी ने पंडित राज जगन्नाथ के काव्य लक्षण को ही सर्वमान्य घोषित किया है ।[१] द्विवेदी जी के मत में असली कविता वह है जो स्वभावानुयायिनी, मनोहारिणी और आत्मा को तल्लीन करने वाली हो ।-

`स्वभावानुयायिनी और मनोहारिणी कविता ही यथार्थ कविता है, इसी से आत्मा तल्लीन और मनमोहित होता है ।`[२] कविता को सरस और भावमयी होना चाहिए -

`कविता यदि सरस और भावमयी है तो उसका अवश्य ही आदर होगा । भाषा उसकी चाहे ब्रज की हो चाहे उर्दू ।`[३] यहाँ भी काव्य के अन्तःपक्ष भाव और रस पर ही विशेष बल है । द्विवेदी जी ने कविता और पद्य के अन्तर को भी स्पष्ट कर डाला है -

`आजकल लोगों ने कविता और पद्य को एक ही चीज समझ रखा है । यह भ्रम है । कविता और पद्य में वही भेद है जो अंग्रेजी की Poetry and Verse में है । किसी प्रभावोत्पादक और मनोरंजक लेख, बात या वक्तृता का नाम कविता है । और नियमानुसार तुली हुई सतरों का नाम पद्य है ।` - (

---

१ - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : डा० उदयभानु सिंह, पृष्ठ -८४ ।
२ - प्रचारिणी पत्रिका, सन् १९०७, भाग ४, पृष्ठ-४७ ।
३ - विचार विमर्श, पृष्ठ - ७७ ।

काव्य की आत्मा :

चिरकाल से विवादग्रस्त ' काव्य की आत्मा ' विषय पर भी द्विवेदी ने प्रकाश डाला है । इस विषय में उनकी मान्यता प्राचीनों से भिन्न नहीं है -

' सुरम्यता हो कमनीय कान्ति है, अमूल्य आत्मा रस है मनोहरे ।'

अनेक स्थलों पर भी उन्हें यही अभिमत है -

' रस ही कविता का प्राण है, और जो यथार्थ कवि है उसकी कविता में रस अवश्य होता है । नीरस कविता कविता नहीं ।' [१]

और भी - ' रस ही कविता का सबसे बड़ा गुण है । ' [२]

अतः द्विवेदी युग में काव्य की आत्मा रस ही माना जाता रहा ।

कविता का प्रयोजन :

इस युग के कवियों के काव्य प्रयोजन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - अन्तरंग प्रयोजन और बाह्य प्रयोजन । द्विवेदी जी ने काव्य के अन्तरंग प्रयोजन में ' आनन्द ' को ही मुख्य माना है :-

' जिस कविता से जितना ही अधिक आनन्द मिले उसे उतना ही उच्च दर्जे की समझना चाहिए ।' [३] आनन्द के साथ ही मनोरंजन भी काव्य के अंतरंग प्रयोजन में

१ - प्राचीन पंडित और कवि, पृष्ठ - ३५, प्र०सं० १९१८ , कामर्शल प्रेस, कानपुर ।
२ - रसज्ञ रंजन, पृष्ठ - २२ ।
३ - संचयन, पृष्ठ - २५० ।

परिगणित है ।-

`इनके (कवियों के) ललित और कोमल कार्यकलाप से जितने ही अधिक लोगों का मनोरंजन हो, समझना चाहिए कि वे अपनी कृति के उद्देश्य में उतने ही अधिक सफल काम हुये हैं ।`[१] आगे उन्होंने एक तीसरा प्रयोजन `विश्रान्ति` को माना है -

`कविता से विश्रान्ति मिलती है । वह एक प्रकार का विराम स्थान है । उससे मनोमालिन्य दूर होता है और थकावट कम हो जाती है ।`[२]

संक्षेप में उन्होंने आनन्द, मनोरंजन, विश्रान्ति और मनोमालिन्य प्रक्षालन को काव्य के अंतरंग प्रयोजनों के अन्दर माना है ।

काव्य के बहिरंग प्रयोजनों में प्रमुख यशः प्राप्ति है । वे समाज हितकारी काव्य को ही यश का प्रदायक मानते हैं :-

`भाषा है रमणी, रस महासुखकारी
भूषण है उसके ग्रन्थ लोक उपकारी
उनको लिख उनकी तृप्ति यथोविधि कीजे
अति विमल सुयश की राशि क्यों न लीजे` - (द्विवेदी काव्य माला, ३७३)

इसी को और स्पष्ट करते हुये लिखते हैं कि -

`कविता किस उद्देश्य से की जाती है ख्याति के लिए, यशः प्राप्ति के लिए धनार्जन के लिए या दूसरों के मनोरंजन के लिए । इसके सिवाय तुलसी दास की तरह स्वान्तःसुखाय भी कविता की रचना होती है । परमेश्वर को संबोधन करके कोई-कोई कवि आत्म-निवेदन भी कविता द्वारा ही करते हैं । पर ये बातें केवल भक्त

---

१ - समालोचना समुच्चय: पृष्ठ - २६, प्र० सं० १६३० ।

२ - रसज्ञ रंजन, पृष्ठ - ६८ ।

कवियों के ही विषय में चरितार्थ होती है । अस्मदादिलौकिकजन तो और ही मतलब से कविता करते या लिखते हैं और उनका यह मतलब ख्याति लाभ और मनोरंजन आदि के सिवाय और कुछ हो भी नहीं सकता ।'[1] सारांश यह कि कविता लिखते समय कवि के सामने एक ऊंचा उद्देश्य अवश्य रहना चाहिए । केवल कविता के लिए कविता करना एक तमाशा मात्र है ।[2]

काव्य का वर्ण्य विषय :

द्विवेदी युग पूर्व रीतिकालीन साहित्य में मादक श्रृंगार का पुन्जीभूतरूप था जिसमें नायक - नायिका भेद, षट्ऋतु वर्णन, रीति ग्रन्थों का ही प्राचुर्य था । काव्य क्षेत्र अलौकिक तथा सीमित हो चला था । भारतेन्दु की कविता भी इससे मुक्त न रह सकी । द्विवेदी जी का आगमन इसके विरोध के साथ होता है -

' जहां तक हम देखते हैं स्त्रियों के भेद वर्णन से कोई लाभ नहीं, हानि अवश्य है, और बहुत भारी हानि है ।'[3] अतः उन्होंने नायक-नायिका भेद ग्रन्थों का विरोध किया -

' इस प्रकार की पुस्तकों का होना हानिकारक है, समाज के सच्चरित की दुर्बलता का दिव्य चिन्ह है । हमारी स्वल्प बुद्धि के अनुसार इस प्रकार की पुस्तकों का बनना शीघ्र ही बन्द हो जाना चाहिए ।'[4]

काव्य के अनेकानेक विषयों की ओर इंगित कर उन्होंने उसका क्षितिज विस्तार किया यद्यपि कि यह कार्य भारतेन्दु जी ने ही प्रारम्भ कर दिया था । उन्होंने लिखा है -

' कविता का विषय मनोरंजक और उपदेशजनक होना चाहिए । यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत-अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका । न परकीयाओं पर प्रबन्ध लिखने

---

१ - संचयन, पृष्ठ - ८८, प्र०सं०, सम्पादक - प्रभात शास्त्री ।
२ - रसज्ञरंजन, पृष्ठ - १५ ।
३ - तदेव, पृष्ठ- ७ ।
४ - तदेव, पृष्ठ - १२ ।

की अब कोई आवश्यकता है, न स्वकीयाओं के ' गतागत ' का पहेली बुझाने की। चींटी से ले कर हाथी पर्यन्त तक, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत - सभी पर कविता हो सकती है।'[१] स्पष्टत: द्विवेदी जी ने काव्य वस्तु का विस्तार हो गया उन्होंने छोटे - छोटे विषयों को चुन कर अपनी इच्छानुसार काव्य रचने की प्रेरणा दी। कवियों को उन्होंने सृष्टि के सजीव या निर्जीव छोटे - छोटे पदार्थों पर छोटी-छोटी कविताएं करने के लिए प्रोत्साहित किया।[२] कवि के सर्वोत्कृष्ट गुणों में नव विषयोद्भावन शक्ति प्रमुख है और इसके लिए उन्होंने कवि कल्पना (Imagination) को बड़ा महत्व प्रदान किया है।[३] कवि का कार्य है प्रकृति पर्यालोचन और उसके अतिरिक्त मानव स्वभाव की आलोचना। जिस कवि को मनोविकारों और प्राकृतिक बातों का यथेष्ट ज्ञान नहीं वह कदापि अच्छा कवि नहीं हो सकता।[४]

स्पष्ट है कि छायावाद के काव्य की नींव द्विवेदी युग में ही पड़ गयी थी। काव्य का विषय स्थूल से सूक्ष्म की ओर जा रहा था। उपर्युक्त उद्धरणों में ' कवि को मनो विकारों के चित्रण ' करने से यही बात ध्वनित होती है। छायावादी कविता में कल्पना का मुख्य स्थान है जिसकी ओर द्विवेदी जी ने यहां संकेत कर दिया है। डा० रविन्द्र सहाय ~~वर्मा~~ ने अपने शोध प्रबन्ध में ठीक ही लिखा है कि यह विषय विस्तार, जीवन जगत के सूक्ष्म विषयों की ओर दृक्पातआंग्ल रोमांटिक कवि वड्सवर्थ के ' लिरिकल बैलड्स ' का प्रभाव है। इस प्रकार द्विवेदी जी ने जीवन और जगत के छोटे-छोटे विषयों पर काव्य लिखने के लिए अपना अभिमत प्रकट किया जो परम्परागत काव्य दृष्टि में एक युगान्तरकारी परिवर्तन था।

---

१ - ४, रसज्ञ रंजन, पृ० - ११, १२, ४१, ४२।

काव्य के उपादान :

वर्ण्य विषय की अभिव्यक्ति पर भी द्विवेदी जी ने जोर दिया है। अभिव्यक्ति निर्भर है अनुभूति पर। कवि को अनुभूति के लिए वर्ण्य विषय से तादात्म्य स्थापित करना चाहिए और इसी अनुभूति से अभिव्यक्ति की सृष्टि होती है:-

'कवि जिस विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहि. । ऐसा न होने से अर्थ-सौरस्य नहीं आ सकता।'[१] और 'अर्थ-सौरस्य ही कविता का प्राण है। जिस कविता में अर्थ का चमत्कार नहीं, वह कविता नहीं।'[२]

तात्पर्य यह कि काव्य में कवि के वस्तु-तादात्म्य-जन्य भावों की हृदयग्राही अभिव्यक्ति में ही काव्य का काव्यत्व निहित है। भावों की अभिव्यक्ति सहज और सरल होनी चाहिए। 'व्यर्थ किसी अर्थ के लाने की चेष्टा करने की अपेक्षा प्रकृत भाव से जो कुछ आ जाय उसे ही पद्य-बद्ध कर देना अधिक सरस और आह्लाद कारक होता है।'[३]

इस प्रकार द्विवेदी जी काव्य में कल्पना और अनुभूति की प्रकृत अभिव्यक्ति का प्राधान्य मानते हैं। इन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर तद्युगीन कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त जी भी काव्य में कल्पना के महत्व के विषय में लिखते हैं :-

'कवि कल्पना जिसमें बड़ी
फूले फले साहित्य की वह वाटिका।' (साकेत)

श्री गुप्त जी ने कविता या कला को भावना (या अनुभूति) की स्फूर्ति कहा है:-

'यह तुम्हारी भावना की स्फूर्ति है
जो अपूर्ण कला उसी की पूर्ति है।' (साकेत)

---

१ - ३ रसज्ञ रंजन, पृष्ठ-८, ६ और ८।

यहाँ मैथिलीशरण गुप्त ने अनुभूति को व्यक्तिगत स्फूर्ति माना है। परन्तु 'साकेत' में ही वे इस व्यक्तिगत अनुभूति को साधारणीकरण की भाषा प्रदान करते हुये समष्टिगत अनुभूति में परिवर्तित कर देते हैं :-

'मेरी विभूति है जो उसको भवभूति कहे क्यों कोई'

कवि की व्यक्तिगत अनुभूति ही विश्व-विभूति या विश्वव्यापी बन जाती है और यही बात छायावादी कविता में भी पायी जाती है। जिसे हम 'रोमांटिक सेन्सिबिलिटी' कहते हैं, जिसका वर्णन आगे होगा, वह इन्हीं दोनों तत्वों – तीव्रतम अनुभूति (एपेन्ड सेन्सिबिलिटी) और उच्च कल्पनात्मक भाव (हाइटेन्ड इमेजिनेटिव फीलिंग)- पर आधारित है। इस प्रकार आगे आने वाले छायावादी काव्य के सिद्धान्तों की नींव द्विवेदी जी और उनके साथियों ने रखी। ठीक उसी तरह जैसे वर्ड्सवर्थ और कालरिज ने 'लिरिकल बैलड' द्वारा आंग्ल रोमांटिसिज्म की। कविवर वर्ड्सवर्थ ने भी तीव्रभावों के प्रकृत प्रवाह को काव्य माना है[1] और द्विवेदी जी भी ऐसा ही मानते हैं। आगे चलकर छायावाद युग में पंत जी ने भी इसी की उद्घोषणा की:-

'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
निकल कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।' (पल्लव)

तात्पर्य यह कि छायावादी काव्य दृष्टि के लिए पृष्ठभूमि के रूप में द्विवेदी युग के इन सिद्धान्तों ने कार्य किया।

काव्य की भाषा :

भाषा के संबंध में भी द्विवेदी जी के विचार अत्यन्त सुलझे हुए हैं। उनके अनुसार कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझ ले

---

1. Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings; (Lyrical Ballad: Wordsworth), A book of Eng. Lit. Vol. II, 4th, Ed. pg. 51.

और अर्थ को हृदयंगम कर सके। पद्य को पढ़ते ही उसका अर्थ बुद्धिस्थ हो जाने से विशेष आनन्द प्राप्त होता है।[१] कविता लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना न करनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है उतना अशुद्ध का नहीं। व्याकरण का विचार न करना कवि की तद्विषयक अज्ञानता का सूचक है।[२] मुहावरे का भी विचार रखना चाहिए। बेमुहावरा भाषा अच्छी नहीं लगती।[३] विषय के अनुकूल शब्द-स्थापना करनी चाहिए। कविता एक अपूर्व रसायन है।[४] गद्य और पद्य की भाषा पृथक् - पृथक् न होनी चाहिए हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है।[५] यह निश्चित है किसी समय बोल चाल की हिन्दी भाषा ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी।[६]

उपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि द्विवेदी जी भाषा की सरलता, सहजता, सर्वजनबोधगम्यता, व्याकरण सम्मतता, विषयानुकूलता और मुहावरा - सूक्तता के विशेष आग्रही थे। उनके अनुसार भारतेन्दु युगीन गद्य और पद्य के भाषा का पार्थक्य भी नहीं होना चाहिए। यहाँ उन पर वर्डसवर्थ के 'लिरिकल बैलड्स' का प्रभाव प्रतीत होता है।[७] भारतेन्दु युग में गद्य बोल चाल में तथा पद्य ब्रज भाषा में लिखा जाता था। द्विवेदी जी ने इस भाषा के अस्तित्व की समाप्ति की घोषणा कर दी और निश्चित कर दिया कि उसका स्थान खड़ी बोली हिन्दी अवश्य लेगी।

---

१ - रसज्ञ रंजन, पृष्ठ-५।
२ - ६ तदेव पृष्ठ-६, ६, ६, ६, ७।
७ - There neither is nor can be any difference between the language of prose and the language of poetry." I
Lyrical Ballad; Wordsworth;
A book of Eng. Lit., Vol. II, 4th, Ed. p. 56.

अलंकार और छन्द :

अलंकारों में अनुप्रासादि के विषय में वे कहते हैं कि :-

" अनुप्रास और यमक आदि शब्दालंकार कविता के आधार नहीं, जो उनके न होने से कविता निर्जीव हो जाय या उसे कोई अपरिमेय हानि पहुंचे । कविता का अच्छा या बुरा होना विशेषतः अच्छे अर्थ और रस बाहुल्य पर निर्भर है ।"[१]

इस प्रकार वे अलंकारों को काव्य का बाह्य उपकरण मानते हैं जिसकी उपस्थिति काव्य में अनिवार्य नहीं है ।

छन्दों के विषय में भी उनका धारणा अत्यन्त स्पष्ट है । वे प्राचीनता के पक्षपाती नहीं हैं । दोहा, चौपाई, रोरठा, घनाक्षरी और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका । कवियों को चाहिए कि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और और छन्द भी लिखा करें ।[२] जो सिद्ध कवि हैं वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करें, परन्तु सामान्य कवियों को विषय के अनुकूल छन्द योजना करनी चाहिए ।[३] पादान्त में अनुप्रासहीन छन्द भी हिन्दी में लिखे जाने चाहिए । इस प्रकार के छन्द जब संस्कृत, अंगरेजी और बंगला में विद्यमान हैं तब कोई कारण नहीं कि हमारी भाषा में वे न लिखे जायं । संस्कृत ही हिन्दी की माता है । संस्कृत का सारा कविता साहित्य इस तुकबन्दी के झगड़े से बहिर्गत सा है । अतएव इस विषय में यदि हम संस्कृत का अनुकरण करें तो स्वतन्त्रता का पूरा-पूरा आभास है ।[४] यमक के नियम कवि के लिए एक प्रकार की बेड़ियां हैं । उनमें जकड़े जाने से कवियों को अपनी स्वाभाविक उड़ान में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ।[५]

---

१ - ५ रसज्ञ रंजन, पृष्ठ-४, १, २, ३, और ८ ।

इस प्रकार वे छन्दों में तुकबन्दी आदि के विरोधी थे और छन्दों की स्वच्छन्दता के पक्षपाती थे । आगे छायावाद युग में जो स्वच्छन्द छन्द विधान आया उसका प्रारम्भ यहीं होता है ।

कवि के साधन :

द्विवेदी जी ने कवि के ५ साधन माने हैं:

क- कवित्व शक्ति, ख - शिक्षा, ग - चमत्कार, घ - गुण दोष ज्ञान और ङ - परिचय-चातुरता ।

जहां रीतिकालीन काव्य का उद्देश्य था-रीति ग्रन्थों के लक्षण निरूपण के आधार पर काव्य प्रणयन, वहां द्विवेदी जी ने उसका बहिष्कार किया । रीतिकालीन कवियों के आदर्श थे संस्कृत साहित्य शास्त्र । द्विवेदी जी ने उससे आगे बढ़कर संस्कृत और अंग्रेजी दोनों की अच्छी बातों को लेने के लिए कहकर अपना उदार काव्य दृष्टि का परिचय दिया :-

"इंगलिश का ग्रन्थ समूह अतिभारी है
संस्कृत भी सबके लिए गौरवकारी है
इन दोनों में से अर्थ रत्न लीजे
हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजे ।"[१]

इस प्रकार द्विवेदी युग में काव्य दृष्टि को सैद्धान्तिक पक्ष का संकोच नहीं हुआ था । वह अपने पूर्ववर्ती काल से कहीं अधिक विस्तृत था । उसकी दृष्टि में काव्य विषय सर्वव्यापक बना, भाषा का सरल-स्वच्छ रूप प्रस्तुत हुआ और छन्दों के प्रति नवीन दृष्टि अपनाई गयी । काव्य विषय में वैविध्य का भाव हुए, भाषा में खड़ी बोली और गद्य और पद्य की एक

---

१ - सरस्वती : फरवरी १९०५ ।

भाषा करने की मांग हुई और साथ ही साथ छन्दों के बन्धन भी स्वीकरणीय नहीं हुये । अतः सैद्धान्तिक काव्य दृष्टि में अब नवीनता के संदर्शन स्पष्टतः होने लगे थे । कुल मिला कर आगे आने वाले छायावाद की काव्य-दृष्टि के लिये नवीन भूमि की रचना इसी काल में हो गयी थी ।

द्विवेदी युगीन काव्य का प्रयोगात्मक (व्यावहारिक) स्वरूप :

काव्य विषय :

पिछले पृष्ठों में हमने देखा है कि रीतिकालीन शृंगार की वासनोमुख पंकिल धारा से काव्य जगत किस प्रकार भारतेन्दु युग ने ही पराङ्मुख हो रहा था और उसकी दृष्टि एक निष्ठत्व (Autocracy) की ओर न होकर लोकनिष्ठ हो रही थी।[१] इधर द्विवेदी जी के आगमन ने इस लोक निष्ठता का और विस्तार किया । उन्होंने चींटी से हाथी तक, भिक्षुक से राजा तक, बिन्दु से सिन्धु तक सभी प्रकार के विषयों को वर्ण्य का आधार बनाया । इस प्रकार इस युग में काव्य विषयक दृष्टि के निम्न रूप मिलते हैं :-

क - नवीन विषयों के प्रति दृष्टि
ख - प्राचीन परम्परागत विषयों के प्रति नवीन दृष्टि और
ग - स्वच्छन्दतावादी दृष्टि ।

द्विवेदी-युग के कवियों ने भारतेन्दु-युगीन कवियों के ही समान नवीन विषयों की ओर दृष्टिपात किया । इन नवीन विषयों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :-

क - सामाजिक ख - धार्मिक, ग - राष्ट्र प्रेम विषयक, घ - प्रकृतिविषयक कविता ङ - प्रेम विषयक और च - अन्य विषय

---

१ - आधुनिक काव्यधारा : डा० केसरी नारायण शुक्ल, पृष्ठ - ११

द्विवेदी युगीन कवि समाज में सुधार चाहते थे और वे सच्चे हृदय से समाज का सुधार और अभ्युदय चाहते थे। भारतेन्दु युग में आर्य समाज के प्रभाव के कारण खंडन-मंडन की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गयी थी। द्विवेदी युग एक शान्ति काल था। अतः यहाँ समाज सुधार के लिए विशेष अवसर मिला। भारतेन्दु युग के सभी कवियों ने समाज की सभी समस्याओं पर लेखनी उठायी परन्तु इस युग के जिस कवि को जो सामाजिक विषय जंचा उसी पर उसने अपनी रचनाएं की। जैसे मैथिलीशरण गुप्त ने अछूतोद्धार पर लिखा तो श्रीधर पाठक ने विधवा पर।[१]

इस युग की सामाजिक कविता चार रूपों में अभिव्यक्त होती है। प्रथम है - समाज के दीन-हीनों के प्रति सहानुभूति। द्वितीय है - सामाजिक कुरीतियों से बच कर रहने का उपदेश। तृतीयतः सामाजिक कुरीतियों का चुटकी एवं परिहास और चतुर्थः - स्वभाव का परिहास। इस युग के कवियों ने मजदूरों, किसानों, अशिक्षित नारियों, विधवाओं और अछूतों की दयनीय दशा के प्रति विशेष सहानुभूति प्रकट की है। 'सनेही' जी की कविता का एक उदाहरण लें -

'कमाया किए जान मजदूर, पेट भरना पर उनका दूर।
उड़ाते माल धनिक भरपूर, मलाई, लड्डू, मोतीचूर।।
सुधारने में है जाके देर, अभी है बहुत बड़ा अंधेर।
अन्नदाता है चार किसान, सिपाही दिखलाते हैं शान।।
डराते उन्हें तमाचा तान, तुम्हें क्या सूझा है भगवान।
आंवले खट्टे मीठे बेर, किया है क्यों ऐसा अंधेर।।'[२]

युग के प्रतिनिधि कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में भी किसानों के प्रति सहानुभूति व्यक्त हुई है -

'हम राज्य लिए मरते हैं
सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं।' (साकेत : नवम सर्गः)

---

१ - आधुनिक काव्य धारा : डा० केशरी नारायण शुक्ल, पृष्ठ - ८२।
२ - मर्यादा : भाग १५, संख्या दो, पृष्ठ-४८।

` भारत-भारती ` में भी यत्र-तत्र कृषकों की दीनता का वर्णन है । गया प्रसाद शुक्ल ` सनेही ` की कविता का एक उदाहरण उपर दिया जा चुका है । सियारामशरण गुप्त भी समाज के बहिष्कृत निम्न वर्ग के प्रति पर्याप्त संवेदनशील हैं । उनकी ` अनाथ ` और ` एक फूल की चाह ` में वह अभिव्यक्त भी है ।

उपदेशवृत्ति का उपयोग भी इस युग के कवियों ने किया है । ` भारत-भारती ` में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों सभी को संबोधित करके उपदेश दिया गया है । श्री रूपनारायण पाण्डेय ने भी ऐसे ही ब्राह्मणों को उद्बोधित किया है -

` ब्रह्म देव फिर उठो देश का हित करने को ।
रोग शोक दारिद्रय दुःख दुर्गति हरने को ।
देखो सारा विश्व फिर क्या है सच्ची सभ्यता
पराकाष्ठा धर्म की और भाव की मान्यता । ` [१]

गुप्त जी ने उपदेशवृत्ति को कवियों के उपर भी लागू करते हुए लिखा -

` केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए ।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए । ` [२]

इस प्रकारकी कविता का तृतीय रूप है - व्यंग्यमय उपहास । इसमें अपनी संस्कृति को छोड़कर नवीन पाश्चात्य संस्कृति का अन्धाधुन अनुकरण करने वाले नवयुवकों पर व्यंग्य है, जैसे नाथू राम शर्मा की ` पंच-पुकार ` कविता । कहीं-कहीं धार्मिक कट्टर पंथियों का उपहास किया गया है, जैसे - छापा-तिलक पर -

` लोग उतना ही बढ़ाते हैं तुम्हें, रंग जितने ही बुरे हों चढ़ गये ।
पर तिलक इकबात को सोचो तुम्हीं, इस तरह तुम घट गये या बढ़ गये ।

---

१ - सरस्वती, खंड १४, संख्या-१, सन् १९१३ ।

२ - इन्दु, कला ५, पृष्ठ-९५ ।

इस तरह के हैं कई टीके बने, जो कि तन के रोग को देते भगा।
जो न मन के रोग का टीका बना, तो हुआ क्या लाभ वह टीका लगा।"[१]

इस युग के कवियों की सामाजिक भावना समाज में प्रचलित बुराइयों के प्रति थी। कहीं-कहीं यह अपरिवर्तनवादी हिन्दू धर्म के ठीकेदारों के प्रति थी जो व्यङ्ग्य और व्यंग्य के सहारे व्यक्त हुई है :-

"हमें स्वर्ग से लौ लगाते रहो, पुनर्जन्म के गीत गाते रहो।
डरो कर्म प्रारब्ध के योग से, करो मुक्ति का कामना भोग से।
नई ज्योति की ओर जाना नहीं, पुराने दिये को बुझाना नहीं।"[२]

इस प्रकार इन कवियों का उद्देश्य सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन करना था। इस कारण इनमें उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति आयी और एक आदर्श काव्य के जो गुण होते हैं वे इनमें नहीं आ सके। कविता वर्णनात्मक होती जा रही थी।

धार्मिक काव्य :

इस युग में धर्म संबंधी भावना व्यापक और उदार हो गयी। इनकी ये रचनाएं युग-पुरुष राम और कृष्ण के नाम -गुण संकीर्तन तक ही नहीं सीमित थीं और न इनमें कोरे धर्म सिद्धान्तों की ही विवेचना की गयी है। इनकी धर्म भावना लोक-विस्तृत थी। धर्म का मूल परोपकार, प्रेम, सेवा आदि में है। इन्होंने अपनी धार्मिक भावना कविताओं में इन्हीं का पल्लवन किया। इन्होंने नवमानवतावाद के आदर्शों का

---

१ - सरस्वती, अंक १८, संख्या २, सन् १८१८।

२ - सरस्वती, भाग ८, संख्या १, सन् १८०६।

आधार रखा। धर्म का मूल भूत-हित और दीनों की सेवा में है -

"जग की सेवा करना ही है सब सारों का सार।
विश्व प्रेम के बंधन ही में मुझको मिला मुक्ति का द्वार" [१]

मुकुटधर पाण्डेय ने तो कृष्ण के जीवन में ही ईश्वर के दर्शन किये हैं -

"खोज में हुआ वृथा हैरान यहाँ ही था तू हे भगवान।
दीन-हीन के अश्रु नीर में, पतितों की परिताप पीर में।
सरल स्वभाव कृष्ण के हृदय में, प्रेम-सीकर से सिंचित मन में।
तेरा मिला प्रमाण।" [२]

इसी प्रकार पं० राम नरेश त्रिपाठी ने ईश्वर के दर्शन "दीन के वतन में" किया है -

"मैं ढूंढता तुझे था जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में।" [३] (अन्वेषण)

अवतारों और देवी देवताओं, राजाओं तथा अन्य ऐतिहासिक महापुरुषों कल्पित नायक-नायिकाओं और प्रेम कथाओं आदि का वर्णन करते-करते हिन्दी कवि थक गये थे। इसी समय आचार्य द्विवेदी ने उन्हें विषय परिवर्तन का आदेश दिया। उनके युग के कवियों की दृष्टि परम्परागत स्थान पर ही केन्द्रित न रह सकी और उन्होंने असाधारण मानवता तथा देवता से आगे बढ़कर सामान्य मानव समाज को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया।[४] इस प्रकार इस युग की कविता इस क्षेत्र में भी नवीनता की ओर मुड़ रही थी। यद्यपि इससे भी काव्य में कोरी उपदेशात्मकता का आविर्भाव हो रहा था और अनुभूति व कल्पना के प्राण सूख रहे थे।

---

१ - सरस्वती, खंड २६, संख्या ६, १९२५।
२ - सरस्वती, खंड १८, संख्या ६, १९१७।
३ - माधुरी, भाग १, खंड १, संख्या ४, पृष्ठ ३१।
४ - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : डा० उदय भान सिंह, पृष्ठ-२९६।

राष्ट्रप्रेम :

यों तो राष्ट्रप्रेम विषयक कवितायें भारतेन्दु युग में ही लिखी जा रही थीं परन्तु भारतेन्दु युगीन राष्ट्रवादी कवितायें क्रांतिोन्मुखी और परम्पराभिमुखी थीं। इस युग की कविता वर्तमान के प्रति प्रवृत्त यथार्थवादी है। भारतेन्दु युग में तो केवल इसकी चर्चा थी। यहां राष्ट्रप्रेम का विस्तार, किसान-मजदूर सभी तक हो गया। मातृभूमि के प्रति नैसर्गिक प्रेम की अनुभूति ही इन कवियों को होती है। द्विवेदी जी ने एक स्थान पर लिखा है कि -

"जग में जन्म भूमि सुखदायी, जिस नर पशु के मन न समायी।
उसके सुख दर्शक नर-नारी, होते हैं अब के अधिकारी।" १

इस युग के कवियों ने जन्म-भूमि का देवीकरण (apotheosisation)भी किया है। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मैथिलीशरण गुप्त की निम्न कविता में है -

"नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
- - - - - - - - - - - - - - - -
हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुणमूर्ति सर्वेश की।" २

गुप्त जी ने ही साकेत में लिखा है -

"विन्ध्य हिमाचल माल भला झुक जाय न वीरों।
सूर्य-चन्द्र-कुल-कीर्ति-कला रुक जाय वीरों
- - - - - - - - - - - - - - - -
यदि परन्तु कुल-मान तुम्हारा हो संकट में।
तो ये प्रणय। प्राण व्यर्थ ही हैं इस घट में।" ३

---

१ -द्विवेदी काव्य माला, पृष्ठ - ३६६।
२ -सरस्वती, मार्च १९१२।
३ -साकेत, पृष्ठ-४७४-७५।

इस देश प्रेम की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति भी यहां श्री रूपनारायण पाण्डेय की कविता में हुई है -

> ' जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई
> कोटि कंठ से मिल कर कह दो हम सब हैं भाई-भाई । ' [१]

गोपालशरण सिंह ने विद्यार्थियों को भारत की आशा कहा है -

> ' प्यारी भारत भूमि विज्ञ में आशा धारे ।
> तुम लोगों पर दृष्टि सदा रखती है प्यारे ।
> है बस छात्रों हाथ तुम्हारे ही गति उसकी
> अवलम्बित है तथा तुम्हीं पर उन्नति उसकी
> अपनी प्राणोपम जाति के तुम्हीं एक आधार हो
> कर भी सकते केवल तुम्हीं उसका बेड़ा पार हो । ' [२]

प्रेम व्यंजनात्मक काव्य :

द्विवेदी युग के कवियों की प्रेम भावना परिवर्तित और संस्कृत रूप में हुई है । यह द्विवेदी जी के आदर्शों का प्रभाव था । इस युग की प्रेम प्रधान कविताएं घोर श्रृंगार परक, अश्लील, असंयमित न होकर शिष्ट, संयमित, पूत एवं लोकभावनात्वपूर्ण हैं । इनके उदाहरण हमें ' साकेत ' की उर्मिला और ' प्रिय प्रवास ' की राधा में मिलते हैं । डा० उदयभानु सिंह ने अपने शोध प्रबन्ध महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग में इस प्रेम प्रधान कविता का कई दृष्टियों से वर्गीकरण किया है :-

१ - आलम्बन की दृष्टि से - लौकिक, अलौकिक व मिश्र ।
२ - आश्रय की दृष्टि से - वस्तुवर्णनात्मक और आत्माभिव्यंजक ।

---

१ - सरस्वती, भाग १३, संख्या ६ ।
२ - सरस्वती, अंक १६, संख्या २, सन् १९१५ ।

३ - स्वरूप की दृष्टि से - विवाहित प्रेम और अविवाहित प्रेम ।

४ - काव्य विधान का दृष्टि से - प्रबन्ध, मुक्तक और प्रबन्ध मुक्तक युक्त प्रेम की कविता ।

प्रकृति काव्य :

द्विवेदी युग में प्रकृति काव्य अछूता न रहा । इस युग से पूर्व प्रकृति का उद्दीपन रूप में ही चित्रण हुआ है और आलम्बन के रूप में बहुत कम । प्रकृति की दो रम्य ऋतुएं हैं - वर्षा और वसंत । इनमें संयोग का प्रसन्नता और वियोग की पीड़ा का ही वर्णन प्राप्त होता है । कहीं-कहीं प्रकृति को उपदेश के साधन के रूप में अपनाया गया है । रीतिकाल में प्रकृति का उद्दीपन के रूप में ही वर्णन किया गया है । प्रकृति का इस रूप में वर्णन भारतेन्दु काव्य में भी हुआ । यहां भी प्रकृति का प्रकृत स्वच्छन्द रूप नहीं दर्शनीय होता । कवियों ने श्रृंगार प्रदर्शनार्थ प्रकृति का वर्णन किया । भारतेन्दु युगीन प्रकृति काव्य कवि का अंतर्-प्रेरित उद्भावना नहीं है । अतः इसमें नीरसता एवं परम्परा - परिपालन मात्र ही परिलक्षित होता है ।

द्विवेदी युग में प्रकृति के सजीव चित्र प्रस्तुत किए गये । पं० श्रीधर पाठक के लिए काश्मीर प्रकृति देवी का श्रृंगार गृह है । यहां पर प्रकृति अपना रूप संवारती है -

"प्रकृति यहां एकान्त बैठि निज रूप संवारति ।
पल-पल पलटति भेष छनिक छवि छिन-छिन धारति ।
विहरति विविध विलास भरी जोवन के मद सनि ।
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति बनि ठनि ।"

(काश्मीर सुषमा)

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने भी अपने खंड काव्यों में प्रकृति का बड़ा ही उत्तम वर्णन किया है। `पथिक` में रामेश्वरम् समुद्र पर्यन्त दक्षिण भारत का और `स्वप्न` में काश्मीर का नैसर्गिक सौन्दर्य अंकित है। `स्वप्न` कविता में ही उन्हें प्रकृति में किसी रहस्यमयी सत्ता का संदर्शन होने लगता है। इस प्रकार इस युग के सभी कवियों- रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय और पं० रामनरेश त्रिपाठी प्रभृति - ने प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण किया है। जहाँ इस युग की प्रकृति विषयक कविता पहले नीरस वर्णनपूर्ण थी वहाँ उत्तरकालीन कविता में स्वच्छन्दता और नवीनता के परिवेश भी प्राप्त होते हैं। जहाँ एक ओर श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय की कविताओं में वर्णनात्मकता और परम्परा परिपालन[१] हो रहे थे, वहीं श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि की कविताओं में प्रकृति का मनोरम वर्णन हो रहा था -

` चारु चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है, अवनि और अंबर तल में।` (पंचवटी)

और -

` सखि, नील नभस्सर में उतरा
यह हंस अहो तरता तरता।` (साकेत)

तथा -

` इसी समय पौ फटी पूर्व में, पलटा प्रकृति - पटी का रंग।
किरण - कंटकों से श्यामाम्बर फटा, दिवा के दमके अंग।
कुछ-कुछ अरुण सुनहली कुछ-कुछ, प्राची की अब भूषा थी।
पंचवटी की कुटी खोलकर खड़ी स्वयं क्या उषा थी।` (पंचवटी)

---

१ - ` दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरु शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी - कुल वल्लभ की प्रभा।` (प्रिय-प्रवास)

इस प्रकार इस युग की प्रारम्भिक कविताएं इतिवृत्तात्मक, उपदेशात्मक और परम्परा परिपालक हैं परन्तु उत्तरवर्ती कविताओं में प्रकृति का स्वच्छन्द, मनोरम एवं रहस्यात्मक रूप मिलता है। स्मरणीय है कि आगे आने वाले छायावाद युग में प्रकृति विषयक ये ही भाव और सुन्दर रूप में पल्लवित हुए। डा० उदयभान सिंह ने द्विवेदी युगीन प्रकृति काव्य का वर्गीकरण निम्न आधारों पर किया है -

१ - भाव की दृष्टि से - भाव चित्रण और रूप चित्रण

२ - सौन्दर्य की दृष्टि से - भयंकर और कोमल (जैसे पं० रामचन्द्र शुक्ल की कविताएं)

३ - विभाव की दृष्टि से - उद्दीपन और आलम्बन

४ - निरूपित और निरूपायिता की दृष्टि से - दृश्य-दर्शक-संबंध सूचक और तादात्म्य सूचक

५ - वियान की दृष्टि से - प्रस्तुत और अप्रस्तुत रूप।[1]

प्राचीन विषयों के प्रति नवीन दृष्टि :

(१) पौराणिक ईश्वरीय चरित्रों के मानवीकरण की दृष्टि - भारतीय वाङ्मय में अत्यन्त प्राचीन काल से ही राम और कृष्ण का चित्रण होता आया है। उन्हें अवतार माना गया है। परन्तु आधुनिक बुद्धिवादी वैज्ञानिक सभ्यता उन्हें अवतार या ईश्वर मानने की भावना को कम न कर सकी। अतः इन चरित्रों का मानवीकरण किया गया। इन्हें महामानव माना गया और इनमें लोकोपकारक गुणों का पुंजीभूत रूप विद्यमान प्रदर्शित किया गया। मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' राम के प्रति यही आशंका उठायी है-

राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या

'प्रिय प्रवास' की भूमिका में हरिऔध जी ने कृष्ण को महापुरुष माना है, न कि ईश्वरावतार। इन्हें महापुरुष मानने का कारण यह था कि आधुनिक विज्ञानवादी युग इन्हें अवतार मानने को प्रस्तुत न था और दूसरे इन्हें अवतार मान लेने पर मानव के लिये ये अनुकरणीय भी न रह जाते। अतः द्विवेदी युग में इनका मानवीय-करण किया गया जो काव्य में एक नवीन दृष्टि का परिचायक था।

वाल्मीकि और व्यास की भांति राम और कृष्ण को महापुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करके द्विवेदी -युग ने हिन्दी जनता के समक्ष अनुकरणीय चरित्र का आदर्श उपस्थित किया ।[१]

(२) विश्व कल्याण और लोक सेवा की भावना - द्विवेदी युगीन कवियों पौराणिक चरित्रों के मानवीकरण की ओर ही दृष्टि नहीं डाली अपितु उनमें विश्व कल्याण और लोक सेवा की भावनाओं का भी सन्निवेश किया । उनमें समष्टि के प्रति व्यष्टि के बलिदान की भावना का संचार किया गया -

` निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी ।
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी । ` (साकेत)

` प्रिय-प्रवास ` की राधा भी कहती है -

मेरे जी में हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा
मैंने देखा परमप्रभु को स्वीय-प्राणेश में हो - (प्रिय प्रवास षोड़शसर्ग)

और भी -

प्यारे आवें सुजन कहें, मोद से गोद लेवें ।
ठंडे होवें नयन - दुख हों दूर, मैं मोद पाऊं ।
ये भी हैं भाव मम उरके और ये भाव भी हैं ।
प्यारे जावें जगहित करें, गेह चाहे न आवें । (प्रिय-प्रवास, षोडशसर्ग)

यहां परम्परागत चरित्र राधा में ` जग-हित ` की भावना भरी गयी है जो द्विवेदी युग की एक नवीन भावना है । इस प्रकार इस युग में विश्व-कल्याण और लोक सेवा की उदात्त महनीय विचारों से साहित्य में नवीन दृष्टि के परिचय मिले और यहीं बातें आगे चल कर छायावादी मानवतावाद (Humanitarianism) में विकसित हुई ।

---

१ - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : डा० उदयभानु सिंह, पृष्ठ - २६५ ।

(२) मानवीय मूल्यों की स्थापना - द्विवेदी युग हिन्दी-साहित्य का एक ऐसा युग है जिसमें हम मानवीय मूल्यों की स्थापना होते देखते हैं। यहां जहां एक ओर प्राचीन पौराणिक चरित्रों को मानवीय धरातल पर ला खड़ा किया गया है वहां दुश्चरित्रों में भी मानव-स्वभाव की सद्वृत्तियों की नैसर्गिक गुणों का अन्वेषण है। युग कवि मैथिलीशरण गुप्त ने कैकेयी, मेघनाद और रावण जैसे बुरे चरित्रों में भी सहनशीलता आदि गुणों का वर्णन किया है। इन चरित्रों में से भी अलौकिक तत्वों को निकाल दिया गया है और उन्हें सहज मानवोचित व्यवहार व गुणों से युक्त दिखाया गया है। उदाहरणार्थ कैकेयी की 'मति' को फेरने में 'मानसकार' की तरह - 'गया गिरा मति फेरि' न कहकर अत्यन्त स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि तैयार की गयी है। मन्थरा के ये वचन कैकेयी को सर्वत्र सुनाई पड़ते हैं -

'भरत से सुत पर भी सन्देह
सुलाया तक न उसे जो गेह।'

मन्थरा के ये स्वर पवन प्रवेग में, सलिल प्रवाह में और प्रत्येक क्रिया-कलाप में उसे सुनाई पड़ते हैं। कैकेयी के चरित्र का वहां उन्नयन किया गया है जहां वह अपने किये पर पश्चाताप करती है -

'युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा
धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।' (साकेत : अष्टम सर्ग)

इसीलिए चित्रकूट की सभा में हम कैकेयी की प्रशस्ति भी सुनते हैं :-

" सौ बार धन्य वह एक लाल की माई । "

लक्ष्मणशक्ति का समाचार पा वह अपने शौर्य का स्मरण करती है -

" मैं निज पति के संग गयी थी असुर समर में ।
जाऊँगी अब पुत्र संग भी अरि-संगर में । " (साकेत द्वादश सर्ग)

अतः उस वीरांगना के पराक्रमी हाथ फड़क उठते हैं -

" भरत जायेगा प्रथम और यह मैं जाऊँगी
ऐसा अवसर भला दूसरा कब पाऊँगी । " (तदेव)

इसी प्रकार अयोध्या सिंह उपाध्याय ने भी " प्रिय प्रवास " में कृष्ण के महान चरित्र को मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया । इसके लिए उन्होंने दो वस्तुओं का आश्रय लिया । प्रथमतः कृष्ण का ऐतिहासिक पुरुष के रूप में प्रदर्शन और द्वितीयतः उनके अतिमानवीय अलौकिक कृत्यों का मानवीय धरातल पर प्रस्तुतीकरण । उदाहरणार्थ कृष्ण के गोवर्धन धारण की कथा को सामान्य बुद्धि-स्वीकृत मनोभूमि पर प्रस्तुत किया गया । कृष्ण गोवर्धन को अंगुली पर धारण न कर समस्त लोगों को गोवर्धन के आश्रय में जाने को कहते हैं -

" इसलिए तज के गिरि कन्दरा
अपर यत्न न है अब त्राण का
उचित है इस काल सयत्न हो
शरण में चलना गिरिराज की । " (प्रिय-प्रवास)

इस प्रकार इस युग में हम मानव मूल्यों की स्थापना होते देखते हैं । मानव केवल सद्गुणों का पुंज ही नहीं अपितु दुर्गुणों और दोषों से युक्त भी प्रस्तुत किया गया है । द्विवेदी युगीन काव्य में अवतारवाद की ऐतिहासिक व्याख्या, काल्पनिक और दैवीकृत्यों एवं घटनाओं का बहिष्कार, दुश्चरित्रों में भी सद्गुणों की खोज निकालने का प्रयत्न

पौराणिक कथाओं का प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण और मनुजता की अलौकिकता के ऊपर स्थापना आदि अनेक तत्व हिन्दी कवियों के नवीन प्रयोगों के परिचायक हैं।" १

(४) नारीत्व की उच्च उद्भावना - रीति काल में नारी पुरुष की भोग्या थी। भारतेन्दु युग में भी नारी के प्रति विशेष उच्च विचारों की सृष्टि नहीं हुई। द्विवेदी युग में ही पुरुष साथ्य की भावना आयी। नारी पुरुष की सहकर्मिणी बन गयी। 'साकेत' की उर्मिला का त्यागमय जीवन कहीं सीता के जीवन से अधिक उदात्त है। 'हरिऔध' जी ने अपने 'रस-कलश' में काव्य शास्त्र के आधार पर लिखे गये नायिका भेद के परम्परागत रूपों में क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत किया है। उनके नायिका भेद की प्रणाली ही भिन्न और नवीन है। वे देश-प्रेमिका, जन्म-भूमि-प्रेमिका, जाति-प्रेमिका, निजानुरागिनी, धर्म-प्रेमिका, लोक-सेविका, नाम की नायिकाओं के नवीन रूप प्रस्तुत करते हैं। 'प्रिय - प्रवास' की राधा इनमें से लोक सेविका नायिका के रूप में आती है -

'मेरे जी में हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा।
मैंने देखा परमप्रभु को स्वीयप्राणेश ही में।' (प्रिय प्रवास)

यहाँ राधा दानों की महिमा और अनाश्रितों की जननी है। अतः इस युग में नारीत्व की उच्च उद्भावना की गयी है जो छायावादी काव्य में और परिष्कृत रूप में मिलती है।

स्वच्छंदतावादी काव्य

जहाँ द्विवेदी युगीन प्रारम्भिक कविताएं इतिवृत्तात्मकता उपयोगितापरक मूल्यों और रूढ़-कल्पना से ग्रसित हैं, वहीं इस युग के अंत में प्रणीत कविताएं आत्माभिव्यंजक,

---

१ - हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव : डा० रविन्द्र सहाय वर्मा, पृष्ठ-१०८।

अन्तर्मुखी और शिल्पगत प्रतीकात्मकता, भाषा की लाक्षणिकता और मसृण शब्दबंध की ओर भी उन्मुख हैं। युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त ने काव्य विकास का यही रूप - बाह्य का अन्तस् की ओर प्रगति - दृष्टिगोचर होता है। 'गुप्त' जी के 'साकेत' में इसका स्पष्ट रूप मिल जाता है। जैसे -

'श्रुतिपुट लेकर पूर्व - स्मृतियाँ यहाँ खड़ी पट खोल।
देख आप ही लाल हुए हैं उनके पांडु कपोल।' (साकेत : नवम सर्ग)

में पूर्व- स्मृतियों जैसी सूक्ष्म भावों का कितना सूक्ष्म निदर्शन है। इसी प्रकार -

'वेदने, तू भी भली बनी।
पायी मैंने आज तुझी में अपनी राह धनी।' आदि में सूक्ष्म का वर्णन है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने भी गुप्त जी की निम्न पंक्तियों में छायावाद के रूप की खोज की है -

'यहाँ होता है जगदाधार।
छोटा सा घर आंगन होता इतना ही परिवार
कहीं न कोई शासक होता, और न उसका काम।
- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -
गाता हुआ गीत ऐसे ही रहता मैं स्वच्छन्द
तू भी जिन्हें रखी में सुन कर पाता परमानन्द।'[१]

गुप्त जी के 'साकेत' में सुन्दर गीतों की भी सृष्टि हुई है और गीतात्मकता अन्तर्मुखी काव्य का लक्षण है। अवलोकन करें -

अन्य 'सखि, निरख नदी की धारा,
ढलमल-ढलमल चंचल-अंचल, झलमल झलमल तारा।' (साकेत: नवम सर्ग)

---

१ - हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी: नन्द दुलारे वाजपेयी

२ - 'काली-काली कोइल बोली
होली, होली, होली ।
हंस कर लाल लाल ओठों से हरियाली हिल डोली
फूटा यौवन फाड़ प्रकृति का पीली पीली चोली ।' (साकेत)

गुप्त जी की कविता में कल्पना का भी आग्रह है -

'मुनि-सत्य सौरभ की कली
कवि कल्पना जिसमें पली
फूले फले साहित्य की वह वाटिका ।' (साकेत)

अस्तु द्विवेदी युग में खड़ी बोली हिन्दी कविता एक नया आयाम लेती हुई प्रतीत होती है । इस युग के पूर्वार्द्ध का इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता और व्यक्तिगत प्रचारणा उत्तरार्द्ध में कल्पनात्मकता, व्यन्यात्मकता और राजनैतिक प्रचारणा के रूप में परिणत हो गयी है ।[१]

इस प्रकार द्विवेदी युग में काव्य विषय बाह्योन्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर अग्रसर होते दिखायी पड़ता है । अतः इस युग की यह दृष्टि द्विवेदी जी की इस काव्य विषयक धारणा के बिल्कुल अनुरूप है कि -

'अन्तःकरण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है ।'[२]

---

१ - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डा० उदयभानु सिंह, पृष्ठ-३०६ ।

२ - रसज्ञ रंजन, पृष्ठ - ६२ ।

काव्य के रूप :

द्विवेदी युग में निम्नांकित काव्य-रूप प्राप्त होते हैं :-

(१) प्रबन्ध काव्य - चूंकि द्विवेदी युग खड़ी बोली कविता का प्रारम्भिक काल था, अतः इस युग के कवियों के लिए कथाओं का सहारा लेकर काव्य प्रणयन करना अधिक सुकर था और द्विवेदी जी ने कवियों को इसके लिए आदेश भी दिया था -

"यदि कोई कवि आदर्श पुरुष के चरित्र का अवलम्बन करके एक अच्छा काव्य लिखता तो उससे हिन्दी साहित्य को अत्यन्त लाभ होता।"[१] फलतः इस युग के कवि प्रबन्ध काव्यों की ओर झुके। ये प्रबन्ध काव्य भी तीन प्रकार के थे -

क - पद्य प्रबन्ध - जैसे मैथिलीशरण गुप्त प्रणीत - 'कुन्ती और कर्ण', 'कीचक की नीचता'।
लाला भगवान दीन प्रणीत 'वीर पंचरत्न'।

ख - खण्ड काव्य - जैसे गुप्त जी कृत - 'जयद्रथ वध', 'किसान' और 'पंचवटी'
रामनरेश त्रिपाठी कृत - 'पथिक'
प्रसाद कृत - 'प्रेम पथिक'
सियारामशरण गुप्त कृत - 'मौर्य विजय'।

ग - महाकाव्य - अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत - 'प्रिय प्रवास'
मैथिलीशरण गुप्त कृत - 'साकेत'।

इस युग के महाकाव्यों में परम्परा का पूर्ण अनुवर्तन नहीं हुआ है। ये दीर्घकाय भी नहीं हैं परन्तु आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में महाकाव्य तो हैं ही।

(२) मुक्तक काव्य - इसके निम्न प्रकार देखने में आते हैं -

क - सौन्दर्य व्यंजनात्मक मुक्तक - १- अलंकारिक चमत्कार के रूप में - 'उद्धवशतक' (रत्नाकर)
२ - उक्ति वैचित्र्यमय - 'चुभते-चौपदे' (हरिऔध)

---

१ - रसज्ञ रंजन : कवि कर्तव्य, पृष्ठ ५।

२ - अनुभूति व्यंजनात्मक - ` व्रजवर्णन (गोपालशरण सिंह)

ख - उपदेशात्मक काव्य - जैसे भारत-भारती (मैथिलीशरण गुप्त)

ग - समस्यापूर्तिपरक काव्य - जैसे ` सहृदय है ` (नाथूराम शर्मा)

(३) - गीति काव्य - इस युग के गीतों की मौलिकता की दृष्टि से निम्न वर्गीकरण में रखा गया है -

क - संस्कृत के ` गीत गोविन्द ` के अनुकरण पर - भारतस्तव (श्रीधर पाठक)

ख - भक्तिकालीन पद-परम्परा की पद्धति पर - ` भव्यभारत ` (रामचरित उपाध्याय,

ग - लोकगीतों की पद्धति पर - ` झांसी की रानी ` (सुभद्रा कुमारी चौहान)

घ - आंग्ल पद्धति पर - शोकगीत (Elegy)

प्रबन्धगीत (Ballad)

पत्रगीत (Epistle)

संबोधन गीत (Ode)

चतुष्पदी (Sonnet)

स्वच्छन्दतावादी गीत - भाव भाषा और छन्द की दृष्टि से

शैली की दृष्टि से गीतों का वर्गीकरण -

वर्णनात्मक

व्यंग्यात्मक

पत्रात्मक

छन्दों की दृष्टि से वर्गीकरण -

एक छन्दोमय, मिश्रछन्दोमय और मुक्त छन्दोमय ।[१]

---

१ - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : डा० उदयभानु सिंह, पृष्ठ - २८१ ।

भाषा – द्विवेदी-युग की भाषा-नीति का निरूपण पहले किया जा चुका है। प्रथमतः वे भाषा-सारल्य के पक्षपाती थे। तद्युगीन काव्य की भाषा सरल हुई थी। 'जयद्रथ वध', 'भारत-भारती', 'प्रिय-प्रवास', 'माधवी', 'पंचवटी' और 'पथिक' आदि रचनाओं में इसका प्रमाण मिलता है। द्विवेदी जी ने भाषा की शुद्धता की चर्चा की। इस युग की काव्य भाषा व्याकरण-सम्मत, परिष्कृत एवं शुद्ध है। इस युग की सैद्धान्तिक मान्यता के अनुसार व्यवहारिक काव्य में भी गद्य की खड़ी बोली भाषा का ही प्रयोग किया गया। इस प्रकार गद्य और पद्य दोनों की भाषा एक हो गयी। डा० उदयभानु सिंह के अनुसार १९०८ तक खड़ी बोली का मंजा हुआ रूप नहीं उपस्थित हुआ। १९१० से १९१७ तक भाषा का सुष्टतर रूप प्रस्तुत हुआ। और १९१८ से १९२८ तक 'साकेत', निराला की 'जुही की कली' आदि में खड़ी बोली काव्य का पूर्ण निखरा हुआ रूप दृष्टिगोचर होता है। इस युग की भाषा में प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं जैसे – 'भारत-भारती' में। ओजगुण का दर्शन सुभद्रा कुमारी चौहान, नाथूराम 'शंकर' तथा माखन लाल चतुर्वेदी की कविता में होता है। द्विवेदी युग की कविताओं में भी इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ एक ओर तो सरल और प्रांजल हिन्दी का निरलंकार सहज-सौन्दर्य है और दूसरी ओर संस्कृत की आलंकारिक समस्त पदावली की छटा। कहीं तो प्रसन्न वाक्य विन्यास का अबस्त्र प्रवाह है, और कहीं छायावादी कवियों की अति गूढ़ व्यंजना। एक स्थान पर मुहावरों और बोल चाल के शब्दों में की झड़ी लगी हुई है तो दूसरे स्थान पर उन्हें तिलांजलि दे दी गयी है। कहीं वाच्य प्रधान, वर्णनात्मक शैली में वस्तुपस्थापन किया गया है तो कहीं लक्ष्य प्रधान चित्रात्मक शैली का चमत्कार है।[१]

इस प्रकार इस युग की भाषा छायावादी काव्य की लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, मसृणता की ओर बढ़ती हुई दृष्टिगत होती है। वस्तुतः द्विवेदी भाषा का यही विकास छायावादी भाषा में चरमोत्कर्ष प्राप्तकर हिन्दी में नवयुग की सृष्टि करता है।

---

१ – महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : डा०उदयभानु सिंह, पृष्ठ-२६३-६४।

छन्द - जैसा कि छन्दों के सैद्धान्तिक निरूपण में कहा गया है कि इस युग में छन्दों के बंधन के लिए विशेष आग्रह न था। कवियों को अपने मनोनुकूल पूर्ण छूट थी कि वे किसी भी छन्द का जिसमें वे निष्णात हों, प्रयोग करें। अतः इस युग में विविध प्रकार के छन्दों का प्रणयन हुआ। एक ओर तो संस्कृत के छन्दों-द्रुत विलम्बित शिखरिणी, स्रग्धरा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा - का प्रयोग है तो दूसरी ओर उर्दू के बहरों का। लाला भगवान दीन के 'वीर पंचरत्न' और हरिऔध जी के 'चौपदों और चुपदों' में इनका प्रयोग है। संस्कृत व उर्दू के छन्दों के अतिरिक्त हिन्दी के छन्द हरिगीतिका, घनाक्षरी, और सवैया आदि का भी प्रचलन इस युग में मिलता है। इस प्रकार द्विवेदी युग के कवि उर्दू, संस्कृत और हिन्दी के छन्दों में सफल हुए हैं।"[१]

इस युग की एक महत्वपूर्ण देन है - अतुकान्त छन्द (ब्लैंक वर्स)। 'हरिऔध' जी ने अपने 'प्रिय प्रवास' की रचना अतुकान्त छन्द में करके एक नवयुग का मार्ग प्रशस्त किया। परन्तु खेद है कि उनकी ओर दूसरे कवि नहीं प्रवृत्त हुए। 'हरिऔध' जी के 'काव्योपवन' कविता संग्रह में कल्पित छन्दों का प्रयोग किया गया। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द का आधार लेकर मात्रावृत्त में एक नवीन अतुकान्त छन्द की सृष्टि की गयी। हरिऔध ने ही प्रिय प्रवास में रसभावानुकूल छन्दों का प्रयोग किया, यथा करुण और श्रृंगार के लिए द्रुतविलम्बित आदि।

<u>निष्कर्ष</u> :

इस प्रकार द्विवेदी युग की काव्य दृष्टि स्थूल विषयों की ओर अधिक रही। वह शास्त्रानुयायिनी (क्लासिकल), आदर्शमयी और वाह्यनिरूपणी थी। विषय की दृष्टि से इस युग की प्रारम्भिक कविताएं इतिवृत्तात्मक थीं। परन्तु उत्तरकालीन कविताओं का झुकाव नवीनता की ओर हो रहा था। जहाँ एक तरफ कवियों की दृष्टि नवीन विषयों की ओर थी वहीं दूसरी ओर प्राचीन विषयों के प्रति नवीन दृष्टि भी

---

१ - आधुनिक काव्यधारा : डा० केशरीनारायण शुक्ल, पृष्ठ - ८३।

मिलती है । इस युग के कवियों ने प्राचीन को नवीन के परिप्रेक्ष्य में देखा अथवा इन कवियों ने प्राचीन काव्य विषयों को युग धर्मानुकूल प्रस्तुत किया । अतः इस युग में पौराणिक ईश्वरीय चरित्रों का मानवीकरण हुआ, विश्व कल्याण की उदात्त भावना का समावेश हुआ, नवीन मानवीय मूल्यों की स्थापना हुई और नारीत्व की उच्च उद्भावना भी । आलोच्य काल में काव्य विषय का यह महान परिवर्तन आने वाले युग का मार्ग दर्शक बन गया । इस प्रकार यद्यपि कि कवियों का झुकाव आदर्शात्मकता[१] उपदेशात्मकता एवं इतिवृत्तात्मकता की ओर अधिक था फिर भी काव्य क्षेत्र का व्यापक विस्तार भी इस युग में हुआ । कुल मिलाकर, काव्य का विषय बहिरंग निरूपक ही था यद्यपि कि उत्तरकाल में अनुभूति, कल्पना, भावना आदि के बीज भी अंकुरित हो रहे थे ।

काव्य विषय के परिवर्तन के साथ काव्य विधान भी बदले । महाकाव्यों के परम्परागत विधान का अनुवर्तन यहां नहीं हुआ । गीति काव्यों का प्रणयन हुआ जिनमें अनुभूत्यात्मकता आदि गुणों का संचार था । ये गीत अंग्रेजी काव्य से भी प्रभावित हैं । इसीलिए यहां ओड गीत, पत्रगीत, संबोधन गीत आदि के दर्शन होते हैं । द्विवेदी काल में सभी काव्य विधानों तथा काव्य रूपों का प्रयोग हुआ है । मुक्तक से लेकर प्रबन्धकाव्यों और गीत काव्यों तक की उच्चता इस काल की कविता की निधि ने देखी ।[२]

छन्द विधान की दृष्टि से इस युग में संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के छन्दों का प्रयोग होता रहा । द्विवेदी जी ने कवियों को "चाहे जिस छन्द में" लिखने की आज्ञा प्रदान कर स्वच्छन्दता को प्रश्रय दिया क्योंकि उनके अनुसार "पद्य के नियम कवि के लिए एक प्रकार की बेड़ियां हैं ।" इस युग में एक अत्यन्त प्रमुख घटना यह हुई कि हिन्दी में अतुकान्त छन्द का आगमन हुआ । इस प्रकार छन्द विधान में भी महान परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है ।

---

१ – "रहे वहां प्लावित प्रीति धारा, आदर्श ही है ईश्वर हमारा ।" (साकेत, द्वादश सर्ग)

२ – हिन्दी कविता में युगान्तर : प्रो० सुधीन्द्र, पृष्ठ ६६ ।

भाषा की दृष्टि से यह युग भाषापरिष्कार का रहा है । भारतेन्दु युग में अंकुरित खड़ी बोली कविता का पल्लवन इस युग में होता है । वस्तुत: यह युग खड़ी बोली के परिष्कार और उन्नयन का युग है ।

आधुनिक हिन्दी काव्य के क्षेत्र में इस युग का एक ऐतिहासिक महत्व है । इस युग की प्रारम्भिक शुष्कता शनैः शनैः सरसता, गंभीरता और मार्मिकता में परिणत होने लगती है । अत: विकास वाद की दृष्टि से इस युग की रचनाओं का मूल्य अधिक अधिक है । भारतेन्दु ने द्विवेदी युग बनाया और द्विवेदी युग ने नवीन युग । द्विवेदी कालीन प्रवृत्तियां ही आज देखने में आती हैं । द्विवेदी जी ने नवीन काव्य शरीर का निर्माण किया और तभी आज उसमें प्राण - प्रतिष्ठा की जा सकी है ।[१]

---

१ - हिन्दी का काव्य शैलियों का विकास : डा० हरदेव बाहरी, पृष्ठ -२७६ ।

उपसंहार :

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य में भारतेन्दु और द्विवेदी युगों का बहुत ही महत्व है। यदि एक ने आधुनिकता के क्षेत्र में 'भाव कल्प' किया तो दूसरे ने 'भाषा कल्प'। यदि भारतेन्दु युग ने हिन्दी काव्य को यथार्थवादी दृष्टि दी, तो द्विवेदी युग ने उसे आदर्शवादी बनाया। एक ने उसे रीतिकालीन शृंगार की रसिकता से मुक्त किया तो दूसरे ने उसे धार्मिक काव्य की समरस मृदुलता से परिपूर्ण। एक ने समाज की रुचि ली तो दूसरे ने परिवार की। एक ने नवराष्ट्रीय चेतना का संचार किया तो दूसरे ने उसे भी आगे बढ़कर अन्तर्राष्ट्रीय चेतना, विश्व कल्याण और लोक मंगल की उच्चभाव भूमि का उद्भावन। इस प्रकार दोनों युगों ने मिल कर हिन्दी काव्य के भाव और भाषा जगत में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किया। दोनो के मेल से ही नवीन युग - छायावाद - का उत्थान संभव हुआ। छायावादी काव्य की अतिशय स्वानुभूति निरूपिणी व्यक्तिवादी भावना, विश्व मंगल की पूत उद्भावना एवं लाक्षणिक अभिव्यक्ति आदि का प्रारम्भिक रूप इन्हीं युगों - विशेषकर द्विवेदी युग - में मिलता है। अतः विकासवाद की दृष्टि से भारतेन्दु और द्विवेदी युग के स्वाभाविक विकास की चरम प्रक्रिया है-छायावाद, न कि उसकी प्रतिक्रिया।

००--००